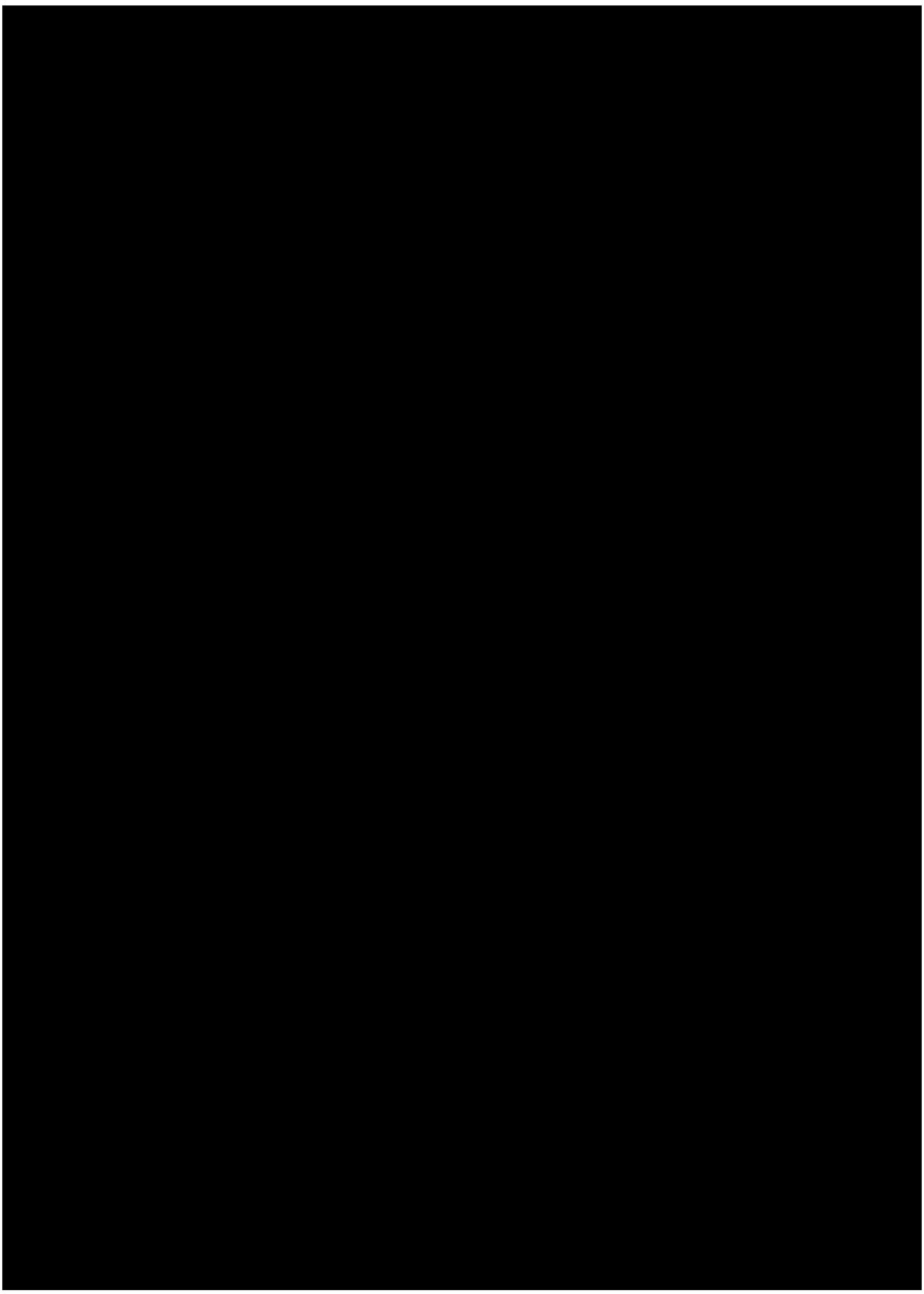

جمال ٹورس اینڈ ٹراویلس

ہندوستان و سعودی حکومت سے منظور شدہ حج و عمرہ ٹور

عمرہ

حج

JAMAL

TOURS & TRAVELS

October Umrah Package

Lucknow - Jeddah - Lucknow

By Saudi Airline

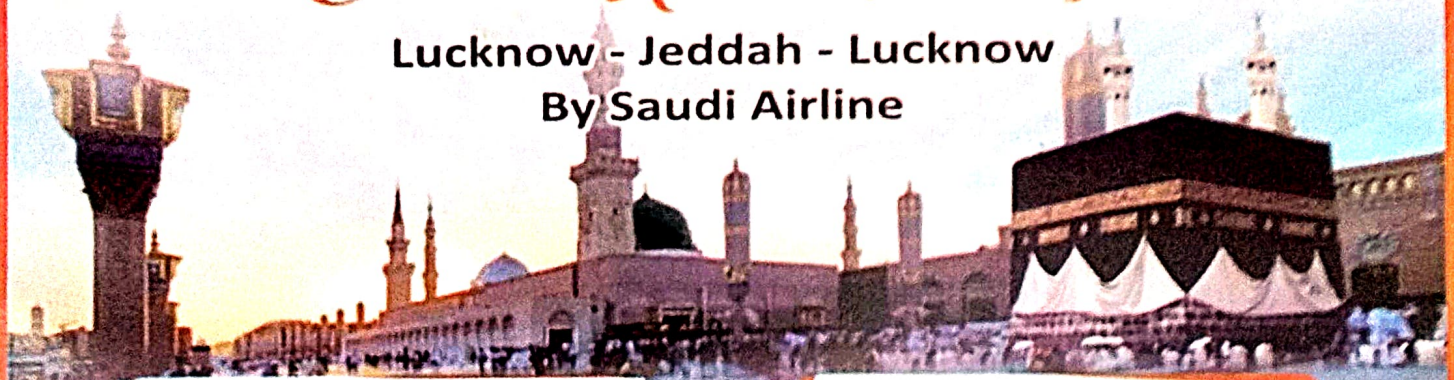

2021 حج

Hotel in Makkah

Distance from Haram - 600 Mtrs.

Hotel in Madinah

Distance from Haram - 250 Mtrs.

Branch Off.: Sarai Meer, Azamgarh, Mau, Shahganj, Sultanpur

Head off.: 108/109, New Poonam Plaza, Naya Nagar,

Mira Road (E) Thane (Maharashtra)-401107

Contact: 9554853186, 9892766882, 7718869778

E-mail: jamaltours@yahoo.com, Website: www.jamaltoursandtravels.com/in

www.kanti.in

संपादक
शिब्ली अरसलान
editorkantimasik@gmail.com

प्रबंधक
रेहान मुबारक शैख़
+91 96993 52114

सहयोग राशि
एक प्रति 25/- रु॰ वार्षिक 270/- रु॰
दो वर्ष 500/- रु॰ पांच वर्ष 1100/- रु॰
आजीवन रु॰ 6000/-
सऊदी अरब और खाड़ी के देशों के लिए 110/- रियाल
यूरोप व अमेरिका के लिए 40/- US डॉलर

ख़रीदार बनने, एजेंसी लेने, प्रचार-प्रसार एवं प्रबंधकीय मामलों के लिए सम्पर्क करें :

कार्यालय :
कान्ति मासिक, डी-314, दावत नगर,
अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर,
ओखला, नई दिल्ली-110025

हेल्पलाइन न॰
+91 8920589292

Account Detail
NAME : KANTI
A/C NO : 0990839195
IFS CODE : IDIB000J029
TYPE : CURRENT
BANK : INDIAN BANK
BRANCH : JAMIA MILLIA ISLAMIA
NEW DELHI - 110025

चेक / ड्राफ्ट 'कान्ति' के नाम से बनवाएं

मुद्रक एवं प्रकाशक मुहम्मद अहमद द्वारा दावत ट्रस्ट (रजि॰), डी-314 दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025 से प्रकाशित एवं भारत ऑफ़सेट प्रेस, 2035, क़ासिम जान स्ट्रीट, बल्लीमारान, दिल्ली - 110006 से मुद्रित।
फ़ोन: 9818799223
संपादक: शिब्ली अरसलान

संस्था की लिखित अनुमति के बिना सम्पूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित है।

वर्ष 30 अंक 9 मार्च 2021



आपकी आशाओं का सुन्दर प्रतिबिम्ब

कान्ति मासिक

इस अंक में

मूल प्रश्न 04
लोकतंत्र की वास्तविक चिंता
शिब्ली अरसलान

पाठक का मोर्चा 06

चिंतन 08
सही बौद्धिक रवैया क्या है?
डॉ॰ अब्दुल मुग़नी

सौंदर्यबोध 10
सशक्त परिवार, सशक्त समाज
डॉ॰ मुहीउद्दीन ग़ाज़ी

मुख्य स्तम्भ 12
● संकट का बजट या बजट का संकट
सआदत ख़लीफ़ा
● बजट में शिक्षा की हिस्सेदारी नीति...
डॉक्टर नफ़ीस अख़्तर
● बजट 2021 से महिलाओं को क्या...
स्वर्णा झा

विशेष 20
असमानता की जड़ में पूंजीवाद!
जुनैद अली

जन-गण-मन 24
बिका हुआ मीडिया और ग़ुलाम पत्रकार
मुहम्मद यूसुफ़ 'मुन्ना'

नारी विमर्श 26
स्त्री मुक्ति के नाम पर कपड़ा विमर्श
हुमा मसीह

महिला दिवस पर विशेष 28
हज़रत ख़दीजा : महिला सशक्तीकरण...
ख़ालिदा हुसैन

मीडिया 30
भारतीय मीडिया का चरित्र
अख़लाक़ अहमद

शिक्षा विमर्श 32
तरबियत, तालीम से सर्वोपरि
शीरीन मारिया

इबारत 33
मरुस्थल में मरुधाम
शम्स बदर

आँखन-देखी 36
मैं भी हाज़िर था वहां
अहमद क़ासिम

साहित्यिकि 37
"ज़िन्दगी के रंग"
ख़ान शाहीन

कॉम्प्रेटिव रिलिजियन 38
क़ुरआन, हिन्दू धर्म-ग्रंथ और राजनीतिशास्त्र
अभिजीत कुमार

अध्ययन चर्चा 40
एक असम्भव सम्भावना
तल्हा मन्नान

अभिव्यक्ति के ख़तरे 42
विचारों में ज़िन्दा हैं गांधी
मुत्तलिब मिर्ज़ा

इतिहास के झरोखे से 44
इतिहास बोध बनाम इतिहास का ...
अशफ़ाक़ ख़ान

सोशल अड्डा 45
किसान आंदोलन : सड़क से सोशल...
संपादन प्रभाग

तर्क-वितर्क 47
आइडेंटिटी पॉलिटिक्स और...
शादाब 'आनंद'

आख़िरी पन्ना 50
इल्मी लेन-देन
सादी इलाहाबादी

मूल प्रश्न



लोकतंत्र की वास्तविक चिंता



शिब्ली अरसलान

आज, हर तरफ़ लोकतंत्र के ख़तरों और चुनौतियों पर बातें हो रही हैं...लोकतंत्र आज का बहुचर्चित विषय है। भारत की विपक्षी राजनीतिक पार्टियां, लिबरल समूह और देश का वैचारिक विपक्ष रात-दिन बीजेपी नीत सरकार पर ये आरोप लगाते रहते हैं कि मौजूदा सरकार लोकतंत्र पर कुठाराघात कर रही है, लोकतांत्रिक मूल्यों और लोकतांत्रिक संस्थाओं को ख़त्म किया जा रहा है... मज़ेदार बात ये है कि हमारे प्रधानमंत्री और बीजेपी का नेतृत्व भी कई अवसरों पर लोकतंत्र के हवाले से विपक्ष पर हमला करता है कि संवैधानिक संस्थाओं जैसे संसद और सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसलों की सीधी आलोचना कर के विपक्ष लोकतांत्रिक व्यवस्था और परम्परा की अवहेलना कर रहा है। उधर समाजवादी प्रगतिशीलता के ध्वजवाहकों को लगता है कि लोकतंत्र के असली चैंपियन वो ही हैं, जबकि बीजेपी अपने संगठन के आंतरिक लोकतंत्र पर मुंह मियां मिट्ठू बनना नहीं भूलती। इस तरह लोकतंत्र पर लेफ्ट-राईट-सेन्टर की नूरा कुश्ती, हम देखते रहते हैं...हालिया बजट सत्र में एक बहुत ही मज़ेदार क्षण आया, जब फासीवाद के विरुद्ध और लोकतंत्र के पुरजोश समर्थन में तृणमूल सांसद महुआ मोइत्रा के 'विस्फोटक' भाषण के बीच में एक बीजेपी सांसद ने माननीय सांसद महोदया के भाषण को लोकतंत्र और संसदीय परम्परा के विरुद्ध बता दिया...लोकतंत्र की झंडाबरदारी पर कांग्रेस बनाम बीजेपी की बरसों पुरानी 'दोस्ताना कश्मकश' पर क्या कहा जाए...प्रश्न ये पैदा होता है कि आख़िर लोकतंत्र की मूल अवधारणा और सही व्याख्या क्या है? लोकतांत्रिक मूल्य, कहां से तय होते हैं?

साधारण तौर पर ये माना जाता है कि लोकतंत्र एक ऐसी शासन प्रणाली है, जिसके तहत जनता अपनी स्वेच्छा से चुनाव में आए हुए किसी भी व्यक्ति अथवा दल को मत देकर अपना प्रतिनिधि चुन सकती है, तथा उसकी सत्ता बना सकती है। लोकतंत्र दो शब्दों से मिलकर बना है 'लोक + तंत्र ', लोक का अर्थ है जनता तथा तंत्र का अर्थ है शासन प्रणाली। इस परिभाषा के अनुसार प्रत्येक राज्य चाहे वह उदारवादी हो या समाजवादी या साम्यवादी, यहां तक कि सेना के जनरल द्वारा शासित अधिनायकवादी तंत्र भी यदि वो चुनाव के रास्ते से आया है तो अपने को लोकतांत्रिक कहता है।

ये सही है कि लोकतंत्र की पूर्णतः सही और सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है। लोकतंत्र के संबंध में अलग-अलग धारणाएं हैं...लोकतंत्र का पुरातन उदारवादी सिद्धान्त, लोकतंत्र का बहुलवादी सिद्धान्त, प्रतिभागी लोकतंत्र का सिद्धान्त, लोकतंत्र का मार्क्सवादी सिद्धान्त जैसे कई सिद्धान्त पाए जाते

हैं...मगर ये बात तो तस्लीम करनी पड़ेगी कि प्राचीन एथेंस के सिटी-स्टेट और वैशाली के लिच्छवी गणराज्य से लेकर आधुनिक लिबरल डेमोक्रेसी की लम्बी विकास यात्रा में 'नागरिक राजनीतिक स्वतंत्रता' केन्द्रीय नुक्ता रहा है।

मूलतः लोकतंत्र, नागरिक राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए सहभागी राजनीति से संबद्ध प्रणाली है...जब हम 'राजनीतिक स्वतंत्रता' की बात करते हैं तो ये स्पष्ट रहे कि राजनीति का संबंध केवल चुनावी जुगाड़बाजी से नहीं है, राज के नीति निर्धारण से इसका संबंध है, तो 'नागरिक राजनीतिक स्वतंत्रता' का सीधा मतलब ये हुआ कि राज के नीति निर्धारण में नागरिक आज़ादी का होना। नीति निर्धारण की ज़िम्मेदारी 'नीति-निर्धारकों' को चुनने मात्र से कैसे पूरी हो सकती है...? अतः लोकतंत्र एक ऐसी फिज़ा बनाता है, जहां लोक, तंत्र को नीति-निर्धारण के लिए सुझाव देता है, बनी हुई नीतियों और विधियों की आलोचना करता है...अब इस कसौटी पर लोकतंत्र के कथित सूरमाओं को परख कर देखिए...सरकार और शासक दल इसके लिए बिल्कुल तय्यार नहीं हैं कि लोक या लोक-समूह के लिए, तंत्र द्वारा निर्मित नीतियों और फ़ैसलों पर खुली आलोचना की फिज़ा बने... बंद कमरे की आलोचना तो और भी मुश्किल है, इसलिए कि सत्ता के मुंह पर बंद महफ़िलों में प्रशंसा और सिफ़ारिश तो आसान है परन्तु आलोचना और प्रश्न खड़े करना अत्यंत वैचारिक प्रखरता और बहादुरी का मुतालबा करता है... राजनीतिक पार्टियों में संगठन के भीतर भी राजनीतिक स्वतंत्रता की बड़ी कमी है...कांग्रेस में गांधी परिवार का वर्चस्व है तो बीजेपी में संघ परिवार का...लेफ्ट पार्टियों में पार्टी परम्परा और संगठन का अनुशासन 'राजनीतिक स्वतंत्रता' की राह में रोड़ा है तो क्षेत्रीय पार्टियों में 'सुप्रीमो' की नाराज़गी का भय स्वतंत्रता विरोधी है...।

लोकतंत्र के इस व्यापक कॉन्सेप्ट की रोशनी में जब हम मौजूदा सामाजिक-राजनीतिक स्थिति का जाएज़ा लेते हैं तो सबसे बड़ी चुनौती ये उभर कर सामने आती है कि 'भय मुक्त' व्यक्ति, परिवार और समाज का निर्माण, लोकतंत्र की सबसे बड़ी आवश्यकता है, इसके बिना महज़ चुनावी एक्सरसाइज़, झूठी दिलासा है। चुनाव और सत्ता केंद्रित राजनीतिक दल, जिसे वास्तव में चुनावी दल कहना चाहिए, कभी भी वास्तविक लोकतंत्र के प्रति ईमानदार नहीं हो सकते...सजग और प्रबुद्ध नागरिकों और सामाजिक आंदोलनों को ही मज़बूती से खड़ा होना पड़ेगा।

यद्यपि लोकतंत्र की मूल अवधारणा राजनीतिक है किन्तु इसकी रूह 'नागरिक राजनीतिक स्वतंत्रता' की जब व्याख्या की जाएगी और की जाती रही है तो 'राजनीति' और 'स्वतंत्रता' शब्दों में जो व्यापकता है, उसे केवल 'चुनाव' और 'व्यवस्था' तक सीमित नहीं रखा जा सकता...अतः ये कहा जाता है कि लोकतंत्र के कुछ मूल्य हैं, ये मूल्य उसी 'नागरिक राजनीतिक स्वतंत्रता' से निकलते और रेगुलेट होते हैं...भय से मुक्ति, अभिव्यक्ति की आज़ादी, समानता, तार्किकता और संवाद का माहौल, व्यक्ति के सम्मान को लेकर तंत्र की संवेदना, सामाजिक न्याय, मानव के मौलिक अधिकार आदि जैसे मूल्यों पर जो बहसें राजनीतिशास्त्र के पाठ्य-पुस्तक में छात्रों को पढ़ाई जाती हैं, ये सभी 'नागरिक राजनीतिक स्वतंत्रता' की अवधारणा से निकलते हैं।

लोकतंत्र के इस व्यापक कॉन्सेप्ट की रोशनी में जब हम मौजूदा सामाजिक-राजनीतिक स्थिति का जाएज़ा लेते हैं तो सबसे बड़ी चुनौती ये उभर कर सामने आती है कि 'भय मुक्त' व्यक्ति, परिवार और समाज का निर्माण, लोकतंत्र की सबसे बड़ी आवश्यकता है, इसके बिना महज़ चुनावी एक्सरसाइज़, झूठी दिलासा है...चुनाव और सत्ता केंद्रित राजनीतिक दल, जिसे वास्तव में चुनावी दल कहना चाहिए, कभी भी वास्तविक लोकतंत्र के प्रति ईमानदार नहीं हो सकते...सजग और प्रबुद्ध नागरिकों और सामाजिक आंदोलनों को ही मज़बूती से खड़ा होना पड़ेगा आंदोलनजीवियों से ही ये उम्मीद की जा सकती है कि वो रबींद्रनाथ टैगोर की ये मशहूर कविता गुनगुनाएं और इसे जियें...

जहां मन में भय न हो कोई, और ऊंचा हो भाल
जहां ज्ञान हो मुक्त,
जहां संकीर्ण दीवारों में न बंटी हो दुनिया
जहां सत्य की गहराई से निकलते हों शब्द सभी,
जहां दोषरहित सृजन की चाह में,
अनथक उठती हों सभी भुजाएं,
जहां रूढ़ियों के रेगिस्तान में खो न गई हो,
तर्क-बुद्धि-विवेक की स्वच्छ धारा
जहां लगातार खुले विचारों और कर्मों से
मिलती हो मन को सही दिशा...
ओ परमपिता, स्वतंत्रता के उसी स्वर्ग में
जागे ये देश हमारा !

(रबींद्रनाथ टैगोर की मशहूर कविता "Where The Mind Is Without Fear" का हिंदी अनुवाद)

■■

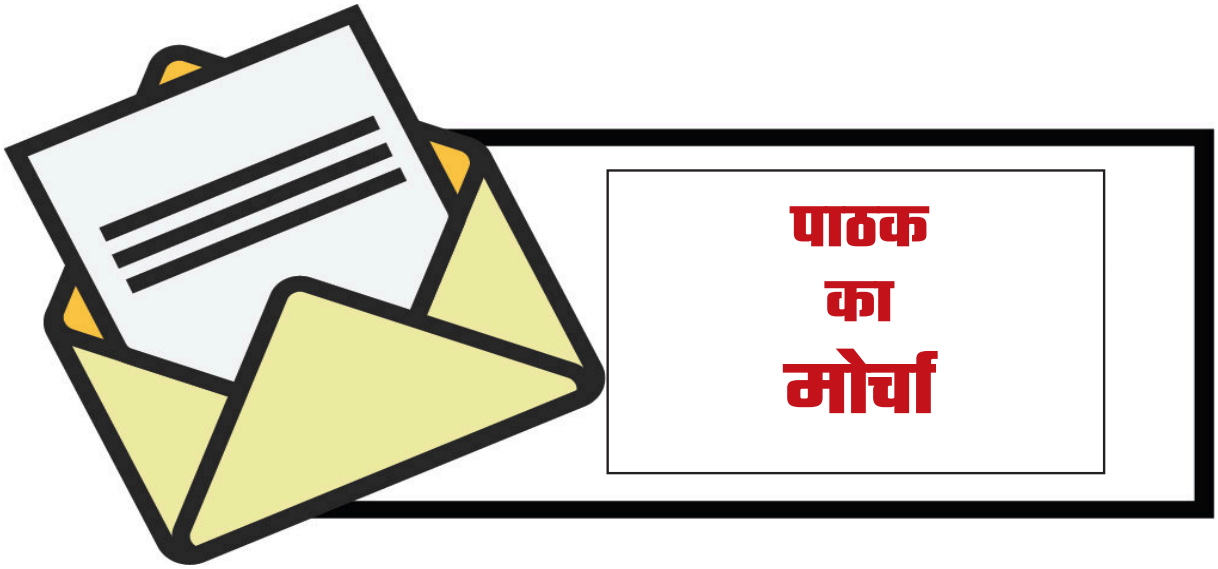

पाठक का मोर्चा

नए रंग-रूप में आकर्षण बढ़ा

'कान्ति' मासिक फ़रवरी 2021 का अंक पढ़ने का सुअवसर मिला। वर्तमान में जबकि स्वतंत्र पत्रकारिता का ह्रास हो चुका है 'कान्ति' मासिक का प्रयास सराहनीय है। पत्रिका तार्किक और तथ्यात्मक ढंग से अपनी बात कहती है। मेरा विचार है कि पत्रिका को बिना धार्मिक नज़रिया अपनाए अपनी बात कहनी चाहिए। धर्म की ज़रूरत समाज को होती है, व्यक्ति को नहीं ऐसा मेरा मानना है। मेरी बातों से असहमत होने के लिए लोग स्वतंत्र हैं। मेरा यह भी मानना है कि धर्म कई मामले में बाधक है। प्राचीनकाल में हिन्दू धर्म के अनुसार समुद्र में यात्रा नहीं की जा सकती थी।

कुल मिलाकर पत्रिका बहुत उत्कृष्ट है। लेखों पर काफ़ी मेहनत की गयी है। इसको जन-जन तक पहुंचाए ताकि समाज को जागरूक किया जा सके। समाज में पढ़ने और पढ़ाने की प्रवृत्ति का ह्रास हुआ है और पश्चिमी प्रभाव वाले सोशल मीडिया पर परोसी जा रही सामग्री से लोग ज़्यादा प्रभावित हो रहे हैं। ऐसे में पत्रिका का महत्व और बढ़ जाता है।

अरुण जगवीर
बनारस, यूपी

सभी लेख अच्छे लगे

कान्ति की नई टीम को इस सुंदर अंक के लिए बधाइयां और भविष्य के लिए शुभकामनाएं।

कान्ति की केवल टीम में ही परिवर्तन नहीं हुआ है, बल्कि कान्ति के सामग्री और रचना में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। कान्ति का नया अंक कई लिहाज़ से अद्भुत और मनमोहक है। देश के अलग-अलग हिस्सों से अलग-अलग आयु वर्ग के लेखकों को इस अंक में शामिल किया गया है। विषयों की विविधता देखकर कई रंगों के फूलों से सुसज्जित बाग़ का एहसास उभरता है, राजनीतिक, सामाजिक, इतिहास, आर्थिक, साहित्य, धर्म-चिंतन व समसामयिक मुद्दों पर बहुत सुंदर और तार्किक लेख पढ़ने को मिले।

देश के ज्वलंत मुद्दों में से एक कृषि क़ानून पर लगभग दो महीने से चल रहे आंदोलन पर संपादकीय लेख बहुत सटीक और तार्किक है, किसानों के आंदोलन को समझने और वास्तविक समस्या तक पहुंचने में इस लेख से बहुत मदद मिलती है, इसी तरह एक और मुद्दा जिसे समाज में नफ़रत भरने के लिए जन्म दिया गया "लव जिहाद" उस पर डॉ. नफ़ीस अख़्तर का लेख पढ़ने लायक़ है। इस मिथ्या को किस तरह जनमानस तक पहुंचाया गया और इसके ज़रिए अतिवादी संगठनों के क्या उद्देश्य हैं इस पर डॉ. नफीस ने बहुत ज्ञानवर्धक और झंझोड़ने वाली बातें बताई हैं।

अन्य लेख भी बहुत अच्छे और पढ़ने योग्य हैं, संपादक महोदय को एक मशवरा है कि अगर सम्भव हो तो एक कॉलम "फ़िल्म समीक्षा" का भी हो, जिसके ज़रिए समसामयिक व सामाजिक मुद्दों पर आने वाली मूवीज़ व वेब सिरीज़ पर चर्चा का वातावरण बने।

मुत्तलिब मिर्ज़ा
कोटा, राजस्थान

मानवता की वाहक 'कान्ति'

सबसे पहले इस सुंदर पत्रिका के नए संपादक को बधाई!

"कान्ति" फ़रवरी का ताजा अंक प्राप्त हुआ! आप एक ऐसी पत्रिका प्रकाशित कर रहे हैं जो समय की बहुत बड़ी ज़रूरत है !वैसे तो इसमें प्रत्येक पृष्ठ पर रोचक जानकारियां हैं ! लेकिन मुझे सबसे अच्छी शीरीन मरिया की लिखी "रिश्तों की सुंदरता" लगी। जिस खूबसूरत अंदाज में उसने लिखा है "रिश्तों की इमारत का सबसे अहम स्तम्भ एहसास है जब तक एहसास ज़िंदा है रिश्ता ज़िंदा है" ये मेरे दिल को छू गया। इस पत्रिका का सबसे सुंदर पहलू ये है कि ये धर्म, जाति से हटकर मानवता को महत्व देता है।

अब हम मार्च के अंक का बेसब्री से इंतज़ार कर रहे हैं, हमारी सुभकामनाएं कान्ति के साथ हैं!

रमीका 'रिम्मी', अररिया, बिहार

बेहतरीन पत्रिका

पहली बार मासिक 'कान्ति' पढ़ने का मौका मिला। पत्रिका मैंने पूरी ईमानदारी और ध्यान से पढ़ने की कोशिश की है। मेरा मत ये है कि 'कान्ति' एक बेहतरीन पत्रिका है, ये सिर्फ़ पत्रिका नहीं बल्कि आज के माहौल में जहां बौद्धिकता सिर्फ नाम की रह गई है, ऐसे माहौल में 'कान्ति', पाठक के बौद्धिक स्तर को काफी ऊंचा करने का एक माध्यम है।

शुरू में संपादकीय ही इतना शानदार है कि क्या कहने। मुझे "ईश्वरीय ग्रंथ का निजीकण" सबसे अधिक पसंद आया। 'कान्ति' में सिर्फ़ ज्ञान की बात नहीं, 'कान्ति' हर विषय पर अपना एक अलग और बेहतरीन राय भी पेश करती है जोकि इसे दूसरी पत्रिकाओं में विशिष्ट मुक़ाम देती है। जैसा कि मैने उपर लिखा है कि 'कान्ति' हमारे बौद्धिक स्तर को उपर उठाने में मदद करती है तो पढ़ने और समझने के लिए पाठक को पहले से ही बौद्धिक तौर पर एक सतह का होना चाहिए। अंत में, मेरा एक सुझाव है कि 'कान्ति' की लेखन शैली को यदि थोड़ा सा हल्का फुल्का कर दिया जाय तो शायद इसे देश में व्यापक क्षेत्र तक फैलाया जा सकता है।

सलामूद्दीन एडवोकेट, प्रधान
मेवात विकास सभा, हरियाणा

सार्थक लेखों से परिपूर्ण

मासिक 'कान्ति' का चौथा अंक नये कलेवर में प्राप्त हुआ । हमेशा की तरह मासिक 'कान्ति' संजीदा व सार्थक लेखों से परिपूर्ण थी। नया कलेवर देख कर दिल खुश हो गया।

'मूल प्रश्न' नाम से सम्पादकीय बहुत अच्छा लगा । इस सम्पादकीय में किसान आन्दोलन पर बड़ी बारीकी से रोशनी डाली गई है। 'लव जिहाद',' तालीम की व्यापक अवधारणा', 'जाति व्यवसथा', 'कलकी अवतार की प्रतीक्षा' और 'इतिहास का सच और सच का इतिहास' भी काफी ज्ञानवर्धक लेख हैं । 'ईश्वरीय ग्रन्थ का निजीकरण' आंखें खोलने वाला लेख है। ईश्वरवादियों को सोचना चाहिए की ईश्वर की वाणी का निजीकरण और उनका निजी स्वार्थ समाज के लिए कितना हानिकारक हो सकता है ।

सिद्दीक़ मेव, नूह, हरियाणा

'कान्ति' का नया अंदाज़ अच्छा लगा

मासिक 'कान्ति' का नया अवतार अत्यंत हर्षजनक है। इससे जुड़े सभी महानुभावों को दिली मुबारकबाद। एक सुझाव यह है कि पत्रिका में पाठकों के उद्गार के लिए एक कॉलम ज़रूर रखें। इसमें पत्रिका के संबंध में आने वाले पाठकों के विचारों को स्थान दें। इससे पत्रिका की लोकप्रियता बढ़ेगी। 'दावती' विषय पर भी एक लेख देने की मेहरबानी करें।

जे. आ. मंसूरी
जामिया नगर, दिल्ली

बदलाव का स्वागत

मासिक 'कान्ति' फ़रवरी का अंक मिला। देखकर काफ़ी प्रसन्नता हुई। नए रंग-रूप, साज-सज्जा के साथ इसमें आमूल-चूल बदलाव किए गए हैं। वास्तव में यह बदलाव समय की आवश्यकता है। एक लंबे समय तक किसी पत्रिका का पारंपरिक रूप से एक ही ढर्रे से निकलना अनुचित है। दुनिया तेज़ी से बदल रही है और लोगों के विचार, सोचने का अंदाज़ एवं पढ़ने-लिखने का स्वाद भी तेज़ी से बदल रहा है। ऐसे में नियमित रूप से एक ही तरह के विषय सामग्री को प्रस्तुत करता सर्वथा अनुचित था। विचार सक्रिय, उदार एवं प्रगतिशील हो तो दुनिया उसे स्वीकार करती है।

पारंपरिक, रूढ़ीवादी विचार उस ठहरे हुए गंदे पानी की तरह है, जो सड़ांध एवं बदबू फैलाती है जबकि सक्रिय विचार बहते पानी के समान है जो स्वच्छ, पवित्र एवं अपने पथ पर अडिग होता है। मैं 'कान्ति' में हुए इस डायनमिक, ऐतिहासिक एवं क्रांतिकारी बदलाव का हृदय की गहराइयों से स्वागत करता हूं तथा आशा करता हूं कि यह क्रांतिकारी बदलाव मासिक कान्ति के लिए जीवनदान साबित हो, यह लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचे, पाठकों की संख्या में वृद्धि हो, देश भर में इसका विस्तार हो एवं पाठक वर्ग में नई क्रांति का संचार हो।

राशिद अनवर
अररिया, बिहार

चिंतन



डॉ॰ अब्दुल मुग़नी

सही बौद्धिक रवैया क्या है?

'ज्ञान' मानव के वजूद की सबसे बड़ी पूंजी है-जबकि ज्ञान के विषय बुनियादी तौर पर दो स्रोतों से मिले हैं: एक वे जो अवलोकन और प्रयोग से प्राप्त हुए हैं। दूसरे वे जिनका उद्भव वह्य (ईश्वरीय-ज्ञान) के ज़रिए होता है-यह ज्ञान ग़ैब (परोक्ष, अदृश्य) की बातों से ताल्लुक़ रखता है। इससे जीवन और सृष्टि के आदि और अंत का ज्ञान होता है। अनादि और अनन्त के बारे में जो सवालात इन्सान के ज़ेहन में आते हैं, जैसे-

1. सृष्टि का प्रारंभ कब और कैसे हुआ?

2. इसका अंत क्या है?

इन सवालों के जवाब देने में इन्सान का ज़ेहन असमर्थ है। दूसरे सवाल से तो साइंस बहस ही नहीं करती। मगर पहले सवाल पर जो कुछ अनुसंधान एवं खोज अब तक साइंस ने की हैं, उसका कोई हासिल नहीं निकला। इसलिए कि इस सवाल का ताल्लुक़ ग़ैब से है, और ग़ैब का इल्म सिवाए अल्लाह के किसी को नहीं है। इन्सान को इतना ही मालूम है जितना अल्लाह ने उसे बता दिया है। लिहाज़ा यह मामला अस्ल में ईमान का है। जिस पर निर्भर रहकर ही कोई बौद्धिक प्रयास परिणामजनक हो सकता है। क़ुरआन ने इस सिलसिले में सही बौद्धिक रवैये की निशानदेही ख़ुद ही कर दी है-

''इस किताब में दो तरह की आयतें हैं-

एक मोहकमात (स्पष्ट निर्देश) जो किताब की अस्ल बुनियाद है और दूसरी मुताशा-बिहात (अस्पष्ट आख्यान)। जिन लोगों के दिलों में टेढ़ है, वे फ़ित्ने की तलाश में हमेशा मुताशा-बिहात ही के पीछे पड़े रहते हैं और उनके अर्थ निकालने की कोशिश करते हैं, हालांकि उनका वास्तविक भावार्थ अल्लाह के सिवा कोई नहीं जानता। इसके विपरीत जो लोग इल्म में पुख़्ताकार हैं, वे कहते हैं कि 'हमारा इनपर ईमान है, ये सब हमारे रब ही की तरफ़ से है।' और सच यह है कि किसी चीज़ से सही सबक़ सिर्फ़ अक़्लमन्द लोग ही हासिल करते हैं।' (आले इमरान-7)

जीवन और सृष्टि के प्रारंभ का संबंध मुताशा-बिहात से है। अपनी जगह यह विषय बहुत भ्रमपूर्ण है और इसमें विभिन्न बल्कि विरोधाभासी विचारधाराओं की संभावना है, जिनके कारण वैचारिक द्वंद पैदा होता है और यक़ीन के साथ कुछ मालूम नहीं हो

सकता कि हक़ीक़त क्या है? अतः इन्सान अपनी अक़्ल से अनुमान करता चला जाता है और उसके विचार बदलते रहते हैं। इस ज़ेहनी गंदगी का असर व्यवहारतः इन्सान की ज़िंदगी पर पड़ता है और उसकी चेतना एवं आचरण दोनों में बिगाड़ पैदा हो जाता है। कभी-कभी वह नास्तिकता की ओर अग्रसर हो जाता है और एक नामुराद ज़िंदगी गुज़ारता है। यह सब मानसिक असंतुलन के कारण होता है। क़ुरआन की रहनुमाई बिगड़े हुए संतुलन को दुरुस्त भी करती है और ज़ेहन को संतुलित भी रख सकती है- 'आसमानों और ज़मीन का पैदा करना इन्सान को पैदा करने की अपेक्षा यक़ीनन ज़्यादा बड़ा काम है। मगर अक्सर लोग जानते नहीं है।'

(सूरः मोमिन-57)

इस आयत से इन्सान के ज़ेहन की हद मालूम होती है। ज़मीन और आसमान की व्यापकता के मुक़ाबले में व्यक्ति की क्षमताओं का स्तर कम है। अतः अगर वह बुद्धि-विवेक से काम ले तो अपने सीमित ज्ञान पर अभिमान करने के बजाए उन बातों का ज्ञान, जिनका समझना उसके लिए असंभव है, ख़ुदा से प्राप्त करे-और उसकी विनती और दुआ हो-'रब्बे ज़िदनी इल्मा' (ऐ परवरदिगार! मुझे और इल्म अता कर)।

(सूरः ताहा-114)



यह दरहक़ीक़त उस हिक्मत (तत्वदर्शिता) की तलब होगी, जिसे क़ुरआन ने 'ख़ैर कसीर' क़रार दिया है-

'जिसे चाहता है हिक्मत अता करता है-और जिसे हिक्मत मिली है, हक़ीक़त में बड़ी दौलत मिली है।'

(अल-बक़रा -269)

इल्म व हिक्मत की तलाश क़ुरआन का एक अहम विषय है। और अल्लाह की किताब ने बार-बार इन्सान को फ़ितरत (नैसर्गिक परिवेश, प्रकृति) के समस्त आन्तरिक एवं वाह्य प्रदृश्यों पर चिंतन-मनन करने का आह्वान किया है।

इन प्रदृश्यों को ख़ुदा ने अपनी क़ुदरत की निशानियों से ताबीर किया है और उनका नाम 'आयात' (निशानियां) रखा है। सृष्टि में हर तरफ़ ख़ुदा की निशानियां फैली हुई हैं और निरंतर इन निशानियों का प्रदर्शन होता रहता है। अतः बुद्धिमत्ता का तक़ाज़ा है कि ईश-निर्देशों के तहत इन आयतों पर मनन करके ऐसे प्रयोजनों से काम लिया जाए जो सत्य एवं वास्तविकता को स्पष्ट कर दें। व्यक्ति को जो क्षमताएं स्वाभाविक रूप से दी गई हैं, उनका सही व्यसन यही है।

'जल्द ही हम उन्हें अपनी निशानियां आफ़ाक़ (सर्वांगीण सृष्टि) में भी दिखाएंगे और उनके अपने नफ़्स (व्यक्ति की शारीरिक एवं भावात्मक संरचना) में भी। यहां तक कि उन पर यह बात खुल जाएगी कि यह फ़रमान वाक़ई बरहक़ (सत्याधारित संदेश) है। क्या यह बात काफ़ी नहीं कि तेरा रब हर चीज़ का साक्षी है।' (हा-मीम सजदा-53)

इस आयत की सत्यता जिस तरह पिछली चौदह सदियों में साबित हुई है, आइंदा भी होती चली जाएगी और निरंतर हो रही है।

■■

जीवन और सृष्टि के प्रारंभ का संबंध मुताशा-बिहात से है। अपनी जगह यह विषय बहुत भ्रमपूर्ण है और इसमें विभिन्न बल्कि विरोधाभासी विचारधाराओं की संभावना है, जिनके कारण वैचारिक द्वंद पैदा होता है और यक़ीन के साथ कुछ मालूम नहीं हो सकता कि हक़ीक़त क्या है? अतः इन्सान अपनी अक़्ल से अनुमान करता चला जाता है और उसके विचार बदलते रहते हैं।

सौंदर्यबोध



डॉ॰ मुहीउद्दीन ग़ाज़ी

सशक्त परिवार, सशक्त समाज

मानव समाज के सबसे अधिक सुंदर और आकर्षक दृश्य परिवार के दायरे में नज़र आते हैं। पति और पत्नी का प्रेम, माता-पिता का स्नेह, छोटों से प्यार, बड़ों का आदर, बीमारों की देखभाल, बूढ़ों को सहारा, विकलांगों की सहायता, दूसरों के काम आना, सबको अपना समझना और दुख-सुख के अवसर पर जमा हो जाना आदि। इस प्रकार परिवार एक छोटा समाज होता है और यह छोटा समाज जितना अधिक सशक्त और सुंदर होता है बड़े समाज के लिए उतना ही अधिक लाभकारी और सहायक सिद्ध होता है।

आधुनिक दौर में जबकि हर चीज़ की भौतिक व्याख्या की जाती है, यह समझाने की कोशिश की जाती है कि परिवार एक सामाजिक रीति मात्र है जो सामाजिक आवश्यकताओं के तहत अस्तित्व में आया और जब वह आवश्यकता बाक़ी न रहे तो उससे छुटकारा हासिल करना ही मानव विकास का तक़ाज़ा है। इस्लाम इस अवधारणा की कोई गुंजाइश नहीं रखता है। वह परिवार को मानवजाति का एक अनिवार्य घटक मानता है, जिससे अलगाव और दूरी मानवजाति के लिए ख़तरनाक हद तक हानिकारक है।

परिवार और रिश्तों की व्यवस्था इन्सानों की विशेषता है और मानव गरिमा का प्रतीक है। रिश्तों का यह निज़ाम हालात और ज़रूरतों के तहत इन्सानों का अपना आविष्कार नहीं है, बल्कि जीवन की दीगर विशिष्ट व्यवस्था की तरह ये भी मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने वाला विशिष्ट प्रबंध है जो इन्सानों को विशेष तौर पर प्रदत्त किया गया है। मानव आवश्यकताओं की पूर्ती भीड़ व झुंड से नहीं हो सकती, उसे पग-पग पर रिश्तों की आवश्यकता होती है।

ईश्वर ने इन्सान को ज़मीन में ख़िलाफ़त का जो बड़ा पदभार दिया है, इसके लिए परिवार और रिश्तों के इस निज़ाम का होना अनिवार्य था। इन रिश्तों को ठीक ढंग से बरतते हुए ही इन्सान ख़िलाफ़त की ज़िम्मेदारी को बेहतर ढंग से अंजाम दे सकता है।

रिश्ते ईश्वर ने बनाए हैं इसलिए उन्हें ख़ास पवित्रता और सम्मान प्राप्त है। इनको तोड़ना या इनका अपमान करना ईश्वर की सीमाओं को लांघना और ईश्वर की अवज्ञा है, इसलिए ईश्वर की नाराज़गी का भय रिश्तों का सबसे बड़ा रक्षक है।

ईश्वर ने इन्सान को ज़मीन में ख़िलाफ़त (Vice-gerency) का जो बड़ा पदभार दिया है, इसके लिए परिवार और रिश्तों के इस निज़ाम का होना अनिवार्य था। इन रिश्तों को ठीक ढंग से बरतते हुए ही इन्सान ख़िलाफ़त की ज़िम्मेदारी को बेहतर ढंग से अंजाम दे सकता है। यही कारण है कि रिश्तों को निभाने का प्राकृतिक जज़्बा होने के बावजूद ईश्वर अपनी पवित्र किताब में इसकी बार-बार ताकीद करता है।

जब तमाम रिश्तों का एक सिरा ईश्वर से मिलता है, इस अर्थ में कि ईश्वर रिश्तों का रचयिता है और उसने रिश्तों की देखभाल का हुक्म दिया है,



तो फिर बिना भेदभाव के तमाम रिश्तों की देखभाल ज़रूरी हो जाती है। रिश्तों में स्थान का फ़र्क़ तो हो सकता है परन्तु रिश्तों में ऐसा विभाजन अथवा भेदभाव नहीं हो सकता कि कुछ रिश्तों को बाक़ी रखा जाए और कुछ को ख़त्म कर दिया जाए।

ये ईश्वर की रचना के अन्दर पाया जाने वाला रहस्य है और मानव पर उस रचयिता की बड़ी कृपा है कि जब वह पैदा होता है तो दो बड़े परिवारों के मध्य पैदा होता है। पैदा होते ही उसका दो बड़े परिवारों से संबंध हो जाता है। ये पैदा होने वाले इन्सान पर ईश्वर की विशेष कृपा होती है। जो लोग परिवार रूपी संस्था से बाहर, विवाह के बिना, नाजायज़ तरीक़े से बच्चे के जन्म का कारण बनते हैं, वे इस पैदा होने वाले बच्चे पर इस पहलू से भी ज़ुल्म करते हैं। इसी तरह जो लोग अपने ख़ानदान से कटे रहते हैं और पैदा होने वाले बच्चों को दो ख़ानदानों की ख़ुशगवार फ़िज़ा उपलब्ध नहीं कराते वो भी अपने बच्चों को उनके पैदाइशी और बुनियादी हक़ से महरूम कर देते हैं। हर बच्चा का ये मौलिक अधिकार है कि उसे नानीहाल और दादीहाल दोनों हासिल हों और माता-पिता की ज़िम्मेदारी है कि वे अपने बच्चे को इस अधिकार से महरूम न होने दे।

इन्सान के भीतर व्यक्तित्व का निर्माण उस समय पूर्ण होता है जब वह बाहरी दुनिया से जुड़े हुए अपने अन्दर मौजूद रंगारंग जज़बों की पूर्ती करता है। परिवार की दुनिया में एक इन्सान को अपने बहुत से जज़बों की पूर्णता का अवसर प्राप्त होता है। ये तमाम अवसर उसके आसपास होते हैं। बड़े-बूढ़ों के साथ संबंध, छोटे बच्चों के साथ संबंध, समान आयु वर्ग के साथियों से संबंध, स्नेह का जज़बा, सेवा-भाव, प्रेम की भावना, दुख बांटने और सुख में भागीदारी का जज़बा, दूसरों को ख़ुश देखकर ख़ुश होने का सुन्दर एहसास, दूसरों के दुख को दूर करने का अथाह लुत्फ़-अतः नेकी और भलाई के बहुत से जज़बे जो मानवजाति की विशेषता है, अपनी पूर्णता का सामान परिवार की दुनिया में आसानी से पा लेते हैं।

इन्सान तनहा ख़ुशी नहीं मना सकता, उसे ख़ुशी मनाने के लिए इन्सानों का साथ चाहिए होता है। इन्सान तनहा दुख भी नहीं ढो सकता है, दुख ढोने के लिए दुख बांटने वाले दरकार होते हैं। परिवार मिल-जुलकर ख़ुशी मनाने और मिल-जुलकर दुख बांटने का एक प्राकृतिक प्लेटफार्म है। ईश्वर ने जीवन को ऐसा बनाया है कि इसमें बोझ भी बहुत है और ख़ुशियां भी बहुत हैं। सशक्त परिवार इसे सुनिश्चित करता है कि इन्सान ज़िन्दगी का बोझ भी आसानी से उठा ले और ज़िन्दगी का सुख भी हासिल कर सके।

■■

मुख्य स्तम्भ



सआदत ख़लीफ़ा
जेएनयू शोधार्थी

बजट 2021-2022

संकट का बजट या बजट का संकट

लोकतंत्र में कल्याणकारी राज्य का जनता से वादा होता है कि वो जनता की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए उसकी उन्नती, भलाई और वेल्फेयर का काम करे, इस संबंध में एक कल्याणकारी लोकतांत्रिक राज्य की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक नीतियां जनता के वेल्फेयर की दिशा में होने चाहिए। पिछले कई वर्षों से यह देखा जा रहा है कि कैसे वेल्फेयर स्टेट का आइडिया ख़त्म होता आ रहा है। विशेषकर Liberatization, Privatization और Globalization की नीति आने के बाद, भारत में वेल्फेयर स्टेट की अवधारणा में एक दरार पड़ गई है। समय के साथ वो दरार चैड़ी होती जा रही है। ताज़ा बजट यानी बजट 2021-2022 पर आप नज़र डालेंगे और पिछले बजट के साथ तुलना करेंगे तो पता चलेगा कि कैसे सोशल सेक्टर में भारी मात्रा में



कटौती हुई है।

बजट और संकटकाल

इसमें कोई शक नहीं है कि जब से निजीकरण बढ़ा है तब से सोशल सेक्टर में भारी व्यावसायीकरण हुआ है, इसके चलते भारत वर्ष में जो लूट मार मची है, ख़ासकर स्वास्थ्य और शिक्षा में जिस तरह का व्यावसायीकरण हुआ है वे किसी से छुपा हुआ नहीं है। यह भी स्पष्ट रहे कि वेल्फेयर स्टेट का आइडिया कैसे ख़त्म होता आया है।

बजट 2021-22 इस अर्थ में महत्वपूर्ण था कि कोविड-19 के चलते इस देश में अर्थ-वित्त, समाज, शिक्षा, स्वास्थ्य और राजनीति के क्षेत्रों में संकट का उद्भाव हुआ। इन तमाम संकट का ज़िक्र इस लेख में मुश्किल है, बजट 2021-22 के संदर्भ में पाठकों का ध्यान शिक्षा और स्वास्थ्य के संकट की ओर कराना अपेक्षित है। एक तरफ़ कोविड-19 के चलते किस तरह स्वास्थ्य क्षेत्र में निजीकरण और व्यावसायीकरण के कारण कोरनटाइन, कोविड जांच, आईसीयू, ऑक्सीजन इत्यादि सुविधाओं के नाम पर लोगों को लूटा गया तो दूसरी ओर कैसे लाखों मज़दूर कोविड-19 के चलते लगाए गए लॉकडाउन के भयावह माहौल में अपने सामानों के साथ, रोज़ी-रोटी को खोने के बाद अपने गांव वापस जाना पड़ा, वहीं तीसरी तरफ़ कैसे शिक्षा व्यवस्था ऑफ लाइन से ऑन लाइन मोड़ में परिवर्तित करते हुए नाकाम साबित हुई। कुल मिलाकर बजट 2021-22 जब आ रहा था तो ये देश इन तमाम समस्याओं से घिरा हुआ था और इस दिशा की ओर जा रहा था कि सामाजिक स्तर पर शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्र में काम करने वाले नाकाम हो रहे थे। ऐसी हालत में बजट की दिशा क्या होगी ये लोगों के लिए बहुत अहम था, लेकिन अफ़सोस की बात यह है कि संकटकाल में आया बजट, संकटों से भरा हुआ है। सामाजिक क्षेत्र जैसे शिक्षा स्वास्थ्य और पोषण के मैदानों में पिछले बजट से इस बजट में भारी कटौती हुई।

शिक्षा और बजट 2021-22

बहुचर्चित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति ये पहला बजट था। शिक्षा से संबंध रखने वाले बहुत सारे हित धारक इस संबंध में बहुत ज़्यादा उम्मीदें लगा बैठे थे, लेकिन इस बजट में कुल मिलाकर शिक्षा पर 93,225 करोड़ आवंटित किया गया जो कि पिछले बजट (99,331 करोड़) से 6.13 प्रतिशत कम है, जो कि कुल शिक्षा का 2.68 प्रतिशत है और जीडीपी के एक प्रतिशत से भी कम है। अब यहां ज़रा रुक कर कोठारी कमीशन के 6 प्रतिशत वाले प्रस्ताव और छात्र संगठनों की मांग ''शिक्षा में बजट का दसवां हिस्सा (10/100)'' पर अपना ध्यान केंद्रित करें। अब सोचने की ज़रूरत यह कि ऐसी हालत में शिक्षा में बजट का दसवां हिस्सा और जीडीपी का 6 प्रतिशत की मांग कहां तक प्रैक्टिकल है।

शिक्षा के कुल बजट में से स्कूली शिक्षा और साक्षरता अभियान में 54,874 करोड़ रुपये आवंटित किए गए हैं, जबकि पिछले बजट में 59,845 करोड़ रुपये आवंटित किए गए थे, इसी प्रकार उच्च शिक्षा के लिए इस बजट में 38,350 करोड़ रुपये आवंटित किए गए जबकि पिछले बजट में उच्च शिक्षा पर 39,467 करोड़ रुपये इसके अतिरिक्त शिक्षा कि कुछ और स्कीमों में भी पिछले बजट के मुक़ाबले कटौती नज़र आई।

उच्च शिक्षा

दुनिया में भारत की उच्च शिक्षा व्यवस्था चीन के बाद, विशालता में दूसरे स्थान पर है। ऑल इंडिया सर्वे फॉर हायर एजुकेशन की 2018-19 की रिपोर्ट के अनुसार इस व्यवस्था में कुल 9093 विश्वविद्यालय और 39,931 महाविद्यालयों में तीन करोड़ चैहत्तर लाख छात्र अपनी पढ़ाई कर रहे हैं। इसका GER (Gross Enrolment Ratio) 26.3 प्रतिशत है यानी 18-23 आयु वर्ग की आबादी का 26.3 प्रतिशत हिस्सा उच्च शिक्षा प्राप्त

कुल मिलाकर ये बजट शिक्षा के संबंध में निराशाजनक है और ज़िम्मदारियों से भागने वाली कार्यपालिका की यात्रा में एक अध्याय का इज़ाफ़ा है। सामाजिक आंदोलनों को ऐसी स्थिति में शिक्षा में बजट का दसवां हिस्सा और जीडीपी की 6 प्रतिशत की मांग पर ज़रा ठहरकर ग़ौर करने की ज़रूरत है। वर्तमान राजनीतिक संदर्भों को समझते हुए इस बात पर ग़ौर किया जाना चाहिए कि बजट के दसवें हिस्से या जीडीपी के 6 प्रतिशत की मांग की जगह उच्च शिक्षा और स्कूली शिक्षा की प्राथमिकताओं और चिंताओं को सामने रखते हुए उचित मांग पत्र तैयार कर आंदोलन चलाए जाएं।

कर रहा है। क्या इतने विशाल शिक्षा व्यवस्था में 38,350 करोड़ काफ़ी हो सकते हैं? 2020 में संसद में बिना चर्चा किए अति महत्त्वाकांक्षी नई शिक्षा नीति (NEP) तो लाई गई मगर बजट 2021-22 में कोई रोड मैप नज़र नहीं आया। शोध और नवाचार की बात तो हुई मगर इस संबंध में माननीय वित्त सचिव ने 50,000 करोड़ मंज़ूरी दी जो कि आने वाले 5 सालों में ख़र्च किए जाएंग, सोशल साइंस में शोध पर ये ख़र्च होगा या नहीं, इसका कुछ पता नहीं, अब तक शोध का दायरा (NEP) और इस सरकार की नज़र में बहुत ही सीमित दिख रहा है जो केवल टेक्नॉलोजी और प्रोडक्शन की दिशा में नज़र आता है। कुल मिलाकर ये बात कही जा सकती है कि इसमें जो मनोहर बातें की गई हैं, उस पर कोई बजटीय आवंटन नज़र नहीं आया। NEP में शिक्षा को Digitize करने की बात हुई, जिसका बजट में भी ज़िक्र आया लेकिन उसका रोड मैप क्या होगा, वो साफ़ नहीं है। NEP में ये बताया गया है कि 2035 तक को 26.3 प्रतिशत से 50 प्रतिशत किया जाएगा, इसके लिए Massive open online course (MOOC) के प्रयोग की बात हुई है। परन्तु इस बजट में इसके लिए किसी ढांचागत स्थापना की बात नहीं है जिससे ये पता चले कि ये व्यवस्था किस दिशा में जा रही है।

Liberization-Privalization-Globalization के आने के बाद शिक्षा का उद्देश्य बदलकर कुछ सुचनाओं को एकत्रित करना और कुछ पेशेवराना हुनर पैदा करने तक महदूद हो गया था, जिसके कारण उच्च शिक्षा व्यवस्था में ऐसे पेशेवराना कॉलेजों की तादाद में भारी वृद्धि नज़र आई, लेकिन और ताज़ा शिक्षा बजट का इससे भी महदूद नज़ारा सामने आया है जिसका उदाहरण लेह में खुलने वाले कॉलेज की है जो जापान के सहयोग से स्थापित किया जाएगा जिसका उद्देश्य केवल औद्योगिक और वोकेशनल हुनर और तकनीक का सृजन है। भारत वर्ष की विशाल उच्च शिक्षा व्यवस्था पिछले कुछ समय से 2 समस्याओं से घिरी हुई है। एक समस्या गुणवत्ता की है और दूसरी समस्या शिक्षा की पहुंच से है। बजट में इन समस्याओं पर कोई सोच नज़र नहीं आती, केवल दुनिया के दूसरी विशाल व्यवस्था के गौरवगान से काम चलाया गया है।

कैसे वेल्फेयर स्टेट का आइडिया ख़त्म होता जा रहा है। विशेषकर Liberatization, Privatization और Globalization की नीति आने के बाद, भारत में वेल्फेयर स्टेट की अवधारणा में एक दरार पड़ गई है। समय के साथ वो दरार चौड़ी होती जा रही है।

स्कूली शिक्षा

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि पिछले बजट की तुलना में स्पर्श स्कूली शिक्षा बजट में 8.3 प्रतिशत कटौती हुई है, स्पष्ट रहे कि पिछले बजट में स्कूली शिक्षा के लिए जितना आवंटन हुआ था, कोविड के चलते पूरे बजट का इस्तेमाल नहीं हुआ है। इस बात की पुष्टि राष्ट्रीय शिक्षा मिशन ने भी की है। इसका सीधा मतलब हुआ कि जितनी आवश्यकता है स्कूली शिक्षा को सुधारने के लिए, बजट में ये गैप बहुत ज़्यादा महसूस होता है। यद्यपि स्कूली शिक्षा में दाख़िले की दर काफ़ी बेहतर है। जी यार 2003 से अब तक 103 से ऊपर रहा है जो कि शुभ संकेत है, इसी तरह हमेशा 90-96 के बीच रहा है। परन्तु स्कूली शिक्षा से जुड़ी कुछ चिंताएं भी हैं। लागू हुए 10 साल हो रहे हैं फिर भी कई राज्यों में (School Clasare) की रिपोर्ट लगातार आ रही है। प्राइवेट स्कूलों में पच्चीस प्रतिशत आरक्षण वाला प्रावधान एक कारण माना जा रहा है। जिसके चलते कई सरकारी स्कूलों को बन्द करना पड़ा। इस बजट में RTE Act से संबंधित दूसरा प्रावधानों के बारे में भी कोई पहल नज़र नहीं आता। सरकारी स्कूलों में शिक्षकों की बहाली, स्कूली ढांचें को मज़बूत करना आदि कई क्षेत्र में ख़र्च की सख़्त ज़रूरत है कई राज्यों से ऐसी रिपोर्ट आती रही है जहां एक स्कूल में मात्र एक अध्यापक पाए जाते हैं।

कुल मिलाकर ये बजट शिक्षा के संबंध में निराशाजनक है और ज़िम्मदारियों से भागने वाली कार्यपालिका की यात्रा में एक अध्याय का इज़ाफ़ा है। सामाजिक आंदोलनों को ऐसी स्थिति में शिक्षा में बजट का दसवां हिस्सा और जीडीपी की 6 प्रतिशत की मांग पर ज़रा ठहरकर ग़ौर करने की ज़रूरत है। वर्तमान राजनीतिक संदर्भों को समझते हुए इस बात पर ग़ौर किया जाना चाहिए कि बजट के दसवें हिस्से या जीडीपी के 6 प्रतिशत की मांग की जगह उच्च शिक्षा और स्कूली शिक्षा की प्राथमिकताओं और चिंताओं को सामने रखते हुए उचित मांग पत्र तैयार कर आंदोलन चलाए जाएं, जिस तरह बजट दिशाहीन होती जा रही है उसी तरह छात्र और सामाजिक संगठन भी इस मामले में दिशाहीन न हों। ■■

मुख्य स्तम्भ



डॉक्टर नफ़ीस अख़्तर
(कानपुर)

बजट में शिक्षा की हिस्सेदारी
नीति और नीयत का प्रश्न

राष्ट्रीय शिक्षा निति 2020 के अनावरण के बाद यह पहला बजट था तथा कोविड 19 संबंधित चुनौतियों से उबरने के लिए शिक्षा जगत को विशेष मदद की जरुरत महसूस की जारही थी, इस लिए उम्मीद यह थी कि बजट मे शिक्षा के लिए आवंटन बढ़े गा। लेकिन आशाओं के विपरीत केंद्र सरकार ने शिक्षा का बजट 6% कम कर दिया है। 2020-21 मे यह आवंटन 99,311 करोड़ रूपये था जिसे घटाकर 2021-22 के लिए 93,223 करोड़ रूपये कर दिया गया है, जिस मे से 54873 करोड़ स्कूली शिक्षा को और 38,350 करोड़ उच्च शिक्षा को दिये जाने का प्रस्ताव है। शिक्षा बजट मे कमी करने से शिक्षा व्यवस्था मे सुधार को बड़ा धचका लगा है। विशेषज्ञों का मानना है जीडीपी का 6 प्रतिशत खर्च किए बिना सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने का हमारा सपना साकार नहीं हो सकता है। इसी वजह से 1968 से बनने वाली सभी राष्ट्रीय नितिय़ों मे सकल घरेलू उत्पाद का 6% शिक्षा पर खर्च किये जाने का लक्ष्य दिया जाता रहा है। लेकिन 52 साल बाद भी य़ह लक्ष्य अबतक हासिल नहीं किया जा सका है।

2019-20 की आर्थिक सर्वेक्षण रिपोरट के अनुसार भारत ने सकल घरेलु उत्पाद का केवल 3.1 प्रतिशत ही शिक्षा पर खर्च किया है। यह वैश्विक औसत खर्च यानी सकल घरेलू उत्पाद के 4.7 प्रतिशत से बहुत पीछे है। नार्वे और क्यूबा जैसे छोटे देश अपनी जीडीपी का क्रमशः 7 और 13 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करते हैं। भारत जैसी अर्थव्यवस्था वाले देश बराज़ील और दक्षिण अफरीका आदि भी अपनी जीडीपी का लगभग 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करते हैं। लेकिन भारत अभी शिक्षा व्यवस्था पर खर्च करने मे आवश्यक्ता से बहुत पीछे खड़ा है। केंद्रीय बजट मे तो इस बार सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 0.6 प्रतिशत ही शिक्षा को आवंटित किया गया है। यद्यपि शिक्षा पर खर्च मे राज्यों की हिस्सेदारी अधिक होती है लेकिन राज्य सरकारें आम तौर पर केंद्रीय रुजहान का ही अनुगमन करती हैं। इसलिए शिक्षा बजट मे यह कटौती अच्छा संकेत नहीं है।

वर्तमान केंद्र सरकार 2020 मे नई शिक्षा निति लेकर आय़ी थी जिसकी तय्यारी मे वह 2014 से ही जुटी हुई थी। और लगातार 6 वर्षों की मेहनत के बाद यह निति जुलाई 2020 मे कैबिनेट से पारित की गयी थी। इस नई राष्ट्रीय शिक्षा निति के तहत वर्ष 2030 तक स्कूली शिक्षा में सकल नामंकन अनुपात (Gross Enrolment Ratio) 100 % तक लाने का लक्ष्य रखा गया है। वर्तमान स्थिति यह है कि कक्षा 12 मे नामंकन अनुपात मात्र 56.5 प्रतिशत है। पढ़ाई बीच मे छोड़ देने वाले यानी ड्राप आउट बच्चों की संख्या करीब दो करोड़ से अधिक है। 100 प्रतिशत नामंकन का लक्ष्य प्राप्त करने हेतु स्कूलों मे बुनियादी इंफ्रास्ट्रक्चर उप्लब्ध कराने, हर स्तर पर पर्याप्त संख्या मे प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था करने, सरकारी स्कूलों की विश्वसनीयता बहाल करने, जिन इलाकों मे स्कूल नहीँ हैं वहाँ स्कूलों की स्थापना करने, छात्रावास की सुविधा मुहैया कराने, पाठ्यक्रम को रोचक बनाने और ड्राप आउट बच्चों के लिए वैकल्पिक तथा इनोवैटिव शिक्षण संस्थान खोलने की जरूरत का शिक्षा निति मे सविस्तार उल्लेख किया गया है जो सरकारों द्वारा धन उप्लब्ध कराए बिना संभव नहीँ है।

इसी तरह उच्च शिक्षा मे भी 2035 तक 52 प्रतिशत सकल नामंकन अनुपात प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित है जोकि वर्तमान मे मात्र 26.3 प्रतिशत है। इसके लिए महाविद्यालयोँ तथा विद्यालयों के बुनियादी ढ़ाँचे को और अधिक विकसित करना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा निति 2020 मे विद्यालयों मे 35 मिलियन अतिरिक्त सीटें जोड़ने तथा 2040 तक सभी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों को बहुविषयक

बनाने की बात कही गयी है। शिक्षा के सार्वभौमीकरण के तहत निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को 3 से 18 साल के बीच के बच्चों तक विस्तार देने, विद्यार्थियों को कक्षा 6 से कोडिंग सिखाने, कक्षा 6 से इंटर्नशिप के साथ व्यवसायिक शिक्षा देने, रटकर याद करने के बजाय रचनात्मक लर्निंग को बढ़ावा देने के लिए ढांचागत सुधार करने, शिक्षक प्रशिक्षण को बेहतर बनाने, तथा उच्च शिक्षा मे आईआईएम और आईआईटी के मेयार के अनुसार बहुविशयक शिक्षण एवं अनुसंधान विश्वविद्यालयों की स्थापना जैसे सुझाव जो राष्ट्रीय शिक्षा निति के अंतरगत दिये गये हैं तकाजा करते हैं कि शिक्षा पर सरकारी व्यय मे वृद्धि की जाये। इसी कारण शिक्षा निति 2020 मे केंद्र व राज्य सरकारों के सहयोग से शिक्षा सेक्टर मे जीडीपी के 6 प्रतिशत सार्वजनिक व्यय की सलाह दी गयी है। लेकिन विडंबना यह है कि सरकार बजट मे शिक्षा के लिए आवंटन घटाकर स्वयं अपनी ही बनाई नितियों की अंदेखी करने मे लगी है।

10 लाख सरकारी स्कूल जिनमे देश के 52 प्रतिशत अर्थात लगभग 25 करोड़ बच्चे पढ़ाई करते हैं बित्तीय कुपोषण की समस्या से जूझ रहे हैं। दिसंबर 2016 मे मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा लोक सभा मे टेबल की गयी रिपोर्ट के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों मे 18 प्रतिशत और माध्यमिक स्कूलों मे 15 प्रतिशत अध्यापकों के पद रिक्त हैं। 11 प्रतिशत सरकारी स्कूलों मे शिक्षण कार्य केवल एक अध्यापक द्वारा किए जा रहे हैं। टाइम्स ऑफ इंडिया की एक सर्वे रिपोर्ट के अनूसार सरकारी स्कूलों मे शिक्षक छात्र अनुपात 50:1 है जोकि तय मानक से बहुत खराब है। कई सरकारी स्कूल सिर्फ कागज़ पर मौजूद हैं कियोंकि उनके भवन आंशिक या पूर्ण रूप से खंडर बन चुके हैं। बहुत से स्कूल केवल एक कमरे तक सीमित हैं। ज्यातर शिक्षक ठीक से प्रशिक्षण प्राप्त किए हुए नहीं हैं। उच्च शिक्षा की बात करें तो वहाँ भी सिथिति अच्छी नहीं है। दुनिया भर की टाप 100 युनिवर्सिटियों की सुची मे एक भी भारतीय यूनिवर्सिटी शामिल नहीं है। हालाँकि स्वास्थ्य, रोज़गार और बेहतर जीवन स्तर तथा आत्म निर्भर भारत की कल्पना शिक्षा के बिना निरर्थक है। और न ही शिक्षा के बिना देश का समावेशी विकास संभव है। इसलिए सरकारों द्वरा लगातार शिक्षा क्षेत्र की अंदेखी किसी तरह देशहित मे नहीं कही जा लकती है।

अगर बजट मे घोषणाओं की बात करें तो वित्र मंत्री ने 15 हजार माडल स्कूल राष्ट्रीय शिक्षा निति के अनुरूप खोले जाने की बात कही है। इसका मतलब यह है कि भारत के कुल 718 जिलों मे से हर एक मे लगभग बीस आदर्श स्कूल बनाए जाएंगे। लेकिन केंद्र सरकार की इस योजना मे राज्यों की क्या भूमिका होगी स्पष्ट नहीं है। और चूंकि शिक्षा समवर्ती सूचि का हिस्सा है इसलिए बजाहिर इसमे राज्य की भूमिका ही अधिक रहेगी। और पूर्व के अनुभव यह बताते हैं कि राज्यों के सहयोग से स्कूलों को विकसित करने की योजनाएं ज्यादा सफल नहीं हुई हैं। इसके आलावा केंद्र सरकार आगामी वित्त वर्ष में ग़ैर सरकारी संगठनों और निजी स्कूलों की मदद से 100 नए सैनिक स्कूल बनाने का इरादा रखती है। यह एक अच्छा कदम हो सकता है लेकिन कहीं इसका यह अर्थ तो नहीं कि सरकार शिक्षा के क्षेत्र में अपनी भूमिका कम से कम कर रही हैं। और बजट में शिक्षा को उसका हिस्सा देने से बचना चाहती है।

भारत में रिसर्च की स्थिति यह है कि आल इंडिया सर्वे ऑफ हायर एजूकेशन की रिपोर्ट के अनुसार केवल 0.5 प्रतिशत छात्र ही पीएचडी या उसके समकक्ष स्तर की शिक्षा प्राप्त करते है। भारत मे शोधकार्यों पर किया जाने वाला खर्च कई छोटे देशों से भी कम है। इनोवेशन, अनुसंधान एवं विकास को आगे लेजाने के लिए नेशनल रिसर्च फाउंडेशन को अगले पाँच सालों मे 50 हज़ार करोड़ रूपये देने का एलान किया गया है। लेकिन वार्षिक बजट मे लंबी अवधि के खर्च का ज़िक्र आम तौर पर नंबर को लुभावना दिखाने के लिए ही होता है।

लेह मे सेंट्रल युनिवर्सिटी और आदिवासी क्षेत्रों मे 750 नए एकलव्य आदर्श स्कूलों की योजना एक स्वागतयोग्य कदम है। उम्मीद है कि यह योजना लेट लतीफी का शिकार नहीं होगी। सरकार ने जापान और यूएई के साथ युवाओं के प्रशिक्षण हेतु सम्झौतों का भी जिक्र किया है। मगर पहले के अनुभव यह बताते हैं कि ऐसे समझौते जबतक धरातल पर न उतर जाएं उनकी चर्चा करना बेमानी होगा।

वास्तव मे सरकार बड़ी बड़ी घोषणाओँ की आड़ मे शिक्षा पर सरकारी खर्च मे कटौती को छुपा रही है। वित्त वर्ष 22 का बजट कार्पोरेट जगत के लिए तो बहुत अच्छा है बाजार ने उसका स्वागत भी किया है। लेकिन आम जनकल्याण से बजट बनाने मे ज़्यादा सरोकार नहीँ रखा गया है। और शायद भारत की आम जनता भी अभी वास्तविक मुद्दों के लिए जागृत नहीं है। इसी लिए सरकारें आसानी से उन्हें धोखे में डाले रहती हैं।

■■

मुख्य स्तम्भ



स्वर्णा झा
नई दिल्ली

बजट 2021 से महिलाओं को क्या मिला ?

फ़रवरी को संसद में बजट पेश किया गया। महिलाओं को उम्मीद थी कि कोरोना काल के बाद उनके लिए ख़ास एलान किए जा सकते हैं। नई स्कीमों के लागू करने से लेकर उन्हें सशक्त बनाने के लिए महत्वपूर्ण क़दम उठाए जाएंगे। मगर वित्त वर्ष 2021-22 का बजट महिलाओं के लिए कुछ ख़ास उम्मीद लेकर नहीं आया। इस वर्ष बजट का 0.7% यानी 24,430 करोड़ की रक़म महिला एवं बाल विकास मंत्रालय को दिया गया।

बजट में महिलाओं के अलावा बाल विकास के लिए सरकार ने नेशनल न्यूट्रिशन बजट को बढ़ाया है। वर्ष 2021-2022 के लिए 3 हज़ार 700 करोड़ देने का एलान किया गया। पिछले साल यह राशि क़रीब 3 हज़ार 400 करोड़ थी। इसके अलावा सक्षम प्रोग्राम और पोषण अभियान 2.0 को एक में मिलाए जाने की भी घोषणा की गई। सोशल सर्विस सेक्टर 2021-2022 में 783.8 करोड़ ख़र्च करने का एलान किया गया जो पिछले वर्ष 695 करोड़ था।

वहीं महिला सुरक्षाएं व सशक्तिकरण को न केवल बजट में दरकिनार किया गया, बल्कि पिछले कई वर्षों से जो रक़म दी जा रही थी उसमें भारी गिरावट आई। 2019 के बजट में जहां सुरक्षा एवं सशक्तिकरण को 1300 करोड़ की रक़म दी गई थी वहीं इस वर्ष उसे घटा कर 48 करोड़ कर दिया गया। इसके साथ ही इस वर्ष "बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, स्वाधार घर योजना, प्रधानमंत्री मातृत्व योजना, चाइल्ड प्रोटेक्शन आदि" के बारे में चर्चा भी नहीं किया गया। हमने देखा कि कोरोना काल में महिलाओं पर हो रहे अत्याचार की संख्या में कितनी बढ़ोत्तरी आई। 'द नेशनल कमीशन ऑफ़ वीमेन' में मार्च से लेकर सितंबर के बीच 13,410 शिकायत दर्ज हुए जिसमें घरेलू हिंसा के 4350 केस थे। कोरोना की वजह से महिलाओं के प्रति हिंसा में काफ़ी बढ़ोत्तरी आई उसके बाद भी इस विषय पर बजट में ध्यान नहीं दिया गया। 'निर्भया फण्ड' जिससे पीड़ित महिलाओं को सहयोग मिलता है उस फण्ड ख़र्च किये जाने की कोई बात नहीं कही गई।

वित्तमंत्री निर्मला सीतारमण ने ये भी कहा कि बहुत से ऐसे क्षेत्र थे जिनमें महिलाओं को काम करने या नाईट शिफ्ट करने की अनुमति नहीं थी। इस बजट सत्र में महिलाओं को हर एक क्षेत्र में कार्य करने के साथ साथ नाईट शिफ्ट करने की भी अनुमति मिल गई। वित्तमंत्री ने कहा कि हम देश में समानता लाना चाहते है।

महिलाओं को नाईट शिफ्ट में दिक्कत नहो इसलिए उन्होंने कंपनियों को अपनी पॉलिसी में सुधार करने को



कहा। लेकिन यहां प्रश्न यह है कि कई ऐसी कंपनियां हैं जहां काम करने वाले लोग उनके कर्मचारी ही नहीं होते हैं।

जब वो कंपनी के कर्मचारी ही नहीं होते तो उन पर कार्य स्थल के नियम कैसे लागू होंगे? जैसे ओला, उबर और मीडिया आदि ऐसे क्षेत्र है जहां लोग इन संस्थानों में काम करते है लेकिन इनके कर्मचारी नहीं होते। ऐसे में इन क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं को किस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ेगा ये सोचा नहीं जा सकता उसके बाद भी वित्तमंत्री ने इन बिंदुओं पर चर्चा नहीं की।

जहां एक ओर समानता को बढ़ावा दिए जाने का दावा किया जा रहा है वही दूसरी ओर ज़मीनी स्तर से असमानता हटे उसके लिए कुछ खास कदम नहीं उठाए गए है।

विश्व बैंक के मुताबिक़ भारत में साल 2020 में महिलाओ की श्रमशक्ति में ज़िम्मेदारी लगभग 19 प्रतिशत है जबकि पुरुषों की 76 प्रतिशत है. कोरोना की वजह से लेबर फ़ोर्स पार्टिसिपेशन रेट महिलाओं का काफी नीचे गिर गया हैं। उसके बाद भी महिलाओं की श्रम शक्ति बढ़ाने पर कुछ खास बात नहीं कि गई।

सेन्टर फ़ॉर मोनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी डेटा के अनुसार नवंबर 2020 तक 6.1 मिलियन महिला मजदूरों का विस्थापन हुआ जिसमें 2.3 मिलियन ग्रामीण इलाकों में वही 4.4 मिलियन विस्थापन शहरी इलाकों में देखने को मिला। कोरोना के कारण जहां घर में महिलाओं को उत्पीड़न सहना पड़ा वही बाहरी दुनिया में बेरोजगारी की दोहरी मार पड़ी। लेकिन इस बजट में इन बातों को ध्यान में नहीं रखा।

आज हम ऐसे दौर में है जहां हम एक तरफ कहते है कि हम महिलाओं को बराबरी की समानता देते हैं। उन्हें समान अवसर प्रदान करते है।

प्रश्न ये है कि अवसर प्रदान कर देने मात्र से क्या समानता आएगी? जमीनी स्तर पर महिलाओं की क्या स्थिति है, उससे हम सभी अवगत है तो क्या बस कहने मात्र से समानता आ जायेगी ? हर साल बजट से महिलाओं के सुधार के लिए कुछ रकम दी जाती है पर उनका सही मायनों में उन्हें लाभ होता है या नहीं ये तो बस महिलाएं जानती हैं।

जहां इस देश में एक तरफ नारे लगाए जाते है "बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ" वही बेटी के पढ़ाने से लेकर बेटी को सशक्त बनाने के लिए जो कदम उठाए जाने चाहिए क्या वो उठाए जा रहे है ? ■■

ندائے یتیم

VOICE OF ORPHAN GIRLS

مسلم لڑکیوں کا یتیم خانہ گیا

کا مختصر تعارف



لڑکیوں کے لئے جدید اور مکمل اسلامی طرز تعلیم سے مزین قومی سطح کا معیاری رہائشی (Residential) ادارہ

● 32 سالہ خدمات ● 19 شعبہ جات ● **تعلیم:** درجہ اطفال تا میٹرک (Matric) ● فاصلاتی تعلیم (Distance Education) آئی اے، بی اے، ایم اے اور لائبریری سائنس I.A., B.A., M.A. and BLIS (Study Centre Yateem Khana Islamia Gaya) (مسلم یونیورسٹی علی گڑھ) سے منظور شدہ)

● **شعبۂ حفظ و ناظرہ:** ● حفظ کے ساتھ میٹرک (Matric) تک کی تعلیم ● 9 طالبات نے حفظ کے ساتھ ساتھ میٹرک پاس کیا ● تعلیم بالغان (Adult Education)

● **ووکیشنل سینٹر:** کٹائی وسلائی: 11 بیچ 103 طالبات ● زری ورکس: 7 بیچ 65 طالبات نے سند حاصل کی ● **بہار سکنڈری بورڈ** 1993ء سے 2020ء تک 97 یتیم بچیوں اور 66 غیر یتیم بچیوں نے میٹرک (Matric) پاس کیا ● کمپیوٹر (Computer) کی بھی تعلیم ● **سالانہ خرچ** 35 لاکھ روپے سے زائد

● **ذریعہ آمدنی:** مسلم عوام کے چندے ● **100** ننھی منی معصوم یتیم بچیوں کا سارا خرچ یتیم خانہ پورا کرتا ہے۔ ● **کفالہ اسکیم** کے تحت ایک یتیم بچی کا سالانہ خرچ بیس ہزار =/20,000 روپے ہے۔ آپ بھی ایک یتیم بچی کی کفالت کا بار اٹھا کر کارِ ثواب میں شریک ہوں۔

تعاون کی مختلف شکلیں ہیں: مثلاً ● زکوٰۃ ● عطیات ● صدقات ● پیداوار کی زکوٰۃ ● دینی کتب ● زمین کی خریداری اور قرض کی ادائیگی وغیرہ

● اسٹاف کی ماہانہ تنخواہ کیلئے ایک لاکھ پینتیس ہزار (-/1,35,000) روپے سے زائد ● والدین یا اپنے دیگر رشتہ داروں کے نام کمرہ یا ہال بنوانا اور تعمیراتی کاموں کے لئے اینٹیں، سیمنٹ، چھڑ اور دیگر سامان یا اس کی قیمت وغیرہ دینا **نوٹ:** یہاں ہر سال حسابات چیک ہوتے ہیں اور آڈٹ Audit بھی کرایا جاتا ہے ● ہر چیز کھلی کتاب کی طرح ہے۔ ادارے میں آکر خود اپنی آنکھوں سے مساوات کا مثالی اور اعلیٰ نمونہ دیکھیں کہ یتیم اور غیر یتیم بچیاں کس طرح مل کر رہا کرتی ہیں۔ اور اسلامی ماحول، پُر فضا مقام، اسلامی لباس، اسلامی یونیفارم اور اسلامی تعلیم کے ساتھ ساتھ کم خرچ میں بہار سکنڈری بورڈ کے نصاب کے ساتھ معیاری تعلیم۔ **ایک بات یاد رکھیں:** ❶ بینک (Bank) کی وہ رقم جو بینک سے سود (Interest) کے طور پر ملتی ہے جو مسلمانوں کے لئے حرام ہے، اس رقم کو غریب، یتیم لڑکیوں کی ناخواندگی و جہالت دور کرنے اور تعلیم پھیلانے کے لئے لڑکیوں کے دارالیتامیٰ فنڈ میں دیں۔ ❷ یتیم بچیاں جن کے والد کا انتقال ہو گیا ہے، ان کے قیام وطعام کے ساتھ ایک بیٹی کی طرح یہاں ساری ضرورت کی چیزیں مفت پوری کی جاتی ہیں۔ ❸ بیرونی طالبات کی رہائش کے لئے اپنے خرچ پر ہوسٹل کا نظم ❹ یتیم طالبات کا داخلہ، تعلیم مع طعام وقیام اور رہائش بالکل مفت۔ کوئی خرچ نہیں لیا جاتا ہے۔

نوٹ: قوم کے معزز حضرات سے گزارش ہے کہ قوم کی یتیم بچیوں کو ادارے میں داخل کرانے کے لئے رہنمائی کریں پیش رفت کریں۔

ادارہ آپکے فراخدلانہ اور مخلصانہ تعاون کا منتظر ہے۔

حکومت ہند سے مسلم لڑکیوں کا یتیم خانہ گیا کو باہر ملک سے رقم لینے کا اجازت نامہ (F.C.R.A) حاصل ہے

(غیر ملکی چندہ دھندگان: Foreign Donors)

NAME: THE GAYA MUSLIM GIRLS ORPHANAGE

● Bank A/C No: 300402010009042

● Bank SWIFT code :UBININBBJAM or IFS code No.: UBIN 0530042

● BANK: UNION BANK OF INDIA (MAIN BRANCH, GAYA)

نوٹ: باہر ملک کے حضرات اب ڈالر، ریال اور پونڈ وغیرہ میں بھی اوپر لکھے ہوئے اکاؤنٹ نمبر پر اپنی رقم بھیج سکتے ہیں۔

چیک وڈرافٹ پر صرف یہ لکھیں "THE GAYA MUSLIM GIRL'S ORPHANAGE"

GENERAL SECRETARY: ترسیل زر و رابطے کا پتہ:

THE GAYA MUSLIM GIRL'S ORPHANAGE

At: KOLOWNA, P.o: CHERKI-- 824237, Distt: GAYA (BIHAR) INDIA

Email: thegayamuslimgirlsorphanage@gmail.Com ● Website: www.gmgo.org

(ہندوستانی چندہ دھندگان: Indian Donors)

NAME: THE GAYA MUSLIM GIRLS ORPHANAGE

● CORE BANKING A/C NO: 300402010007752

● BANK IFS Code No UBIN 0530042

● BANK: UNION BANK OF INDIA (MAIN BRANCH, GAYA)

نوٹ: ہندوستانی صوبوں اور باہر ملک والے حضرات ہندوستانی بینک کا چیک، ڈرافٹ اور رقم چندہ دھندگان والے اکاؤنٹ نمبر پر اپنی رقم بھیجیں۔

Note: Documentary film—Nazr-e-Enayat جس میں دونوں یتیم خانہ کی مختصر تاریخ ہے۔ انٹرنیٹ You-Tube پر دیکھیں

نوٹ: ON LINE اور کور بینکنگ (بینک) والے حضرات E-mail یا ڈاک سے اپنا مکمل پتہ بھیج دیا کریں تاکہ اُسی پتے پر رقم کی رسید روانہ کی جا سکے۔

اقبال احمد خاں بانی واعزازی جنرل سکریٹری 09934480190

मुख्य स्तम्भ



जुनैद अली
सतना, म०प्र०

असमानता की जड़ में पूंजीवाद!

वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में पूरी दुनिया एक ऐसे मुहाने पर आकर खड़ी हो चुकी है जहां से भविष्य की संभावनाएं और सपने दोनों ही धूमिल दिखाएं देते हैं। समस्याओं का अंबार लग चुका है और जटिल स्थितियों के समाधानों की रफ़्तार बहुत सुस्त और कहीं पर यह ऋणात्मक दायरे में पहुंच चुकी है। समस्याएं किसी विशेष क्षेत्र और ख़ास वर्ग तक सीमित नहीं है, बल्कि मौजूदा समय पर दुनिया चौतरफ़ा संकटों से घिरी हुई है। आज़ वैश्विक सतह पर युद्ध के बादल मंडरा रहें हैं, गंभीर स्वास्थ्य संकट, कुपोषण, भुखमरी, निर्धनता और असमानताओं की लंबी लकीरों को साफ़तौर पर देखा जा सकता है और बंद आंखों से त्रासदियों का अनुभव भी किया जा सकता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि असमानता वह केन्द्रीय कारक है, जिसके आधार पर दुनिया में निरंतर संघर्ष की स्थिति बनी रही है। मानव समुदाय में विविधता और असमानता एक सार्वभौमिक सत्य है, लेकिन इसका मानव वर्गीकरण के आधारों में प्रयुक्त होना,व्यापक असंतुलन का बोध कराता है। इस आधार पर किसी विशेष पहचान को निश्चित किया जाना, मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं में आईं बड़ी गिरावट को दर्शाता है। आज़ वैश्विक स्तर पर व्याप्त आर्थिक असमानताओं को लेकर बड़ा शोर है, बल्कि इसे यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि आर्थिक असमानताओं को लेकर ख़तरे की घंटी बज रही हैं। दुनिया में अमीरी-गरीबी पर आधारित दो ध्रुवीय विखंडन में चरमोत्कर्ष पर है। इसके आधार पर वैश्विक सतह पर भारी उथल-पुथल मच सकती है।

पूंजीवाद आधारित व्यवस्था ने समूचे विश्व में मानव शोषण को चरम सीमा तक पहुंचा दिया। जटिलताओं को लेकर दुनिया के सभी कोनों के लोगों को एक व्यावहारिक प्रणाली पर नए सिरे से सोचने पर मजबूर कर दिया, जिसके आधार पर दुनिया में समाजवाद और साम्यवाद, दो सिद्धांत या दो विचार प्रतिपादित हुए। असमानता के विरोध में बड़े आंदोलन-प्रदर्शन और संघर्ष हुए और इसके आधार पर दुनिया के कई हिस्सों में समाजवाद और साम्यवाद के सिद्धांतों पर आधारित व्यवस्था स्थापित हुई,जिसका मूल उद्देश्य निर्विवाद रूप से मानव समानता स्थापित करने से जुड़ा रहा। समानता की परिकल्पना पर केन्द्रित रहते हुए, इन दोनों विचारों ने समाज में एक नयी आशा को प्रस्फुटित किया और इन दोनों विचारधाराओं का दुनिया के कई भागों में दशकों तक गहरा प्रभाव पड़ा, लेकिन दोनों धारणाओं के दोषों और हठ ने समानता के उस स्वप्न को सजीवता प्रदान नहीं की, जिसके आधार पर इनका अस्तित्व टिका हुआ था।

दुनिया में साम्यवाद के समानांतर उदारवाद के विचार भी गतिशील रहें, लेकिन वर्ष 1991 में साम्यवाद के पतन के पश्चात् उदारवाद का प्रभाव व्यापक स्तर पर पहुंच गया। उदारवाद लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, आज़ादी, मानवाधिकारों और लैंगिक समानता का प्रबल समर्थक रहा है लेकिन आर्थिक समानता में वह मापदंडों पर खरा नहीं उतरा। उदारवाद की नितियों एवं व्यवस्थाओं की सूक्ष्मता से पड़ताल की जाए तो इस विचारधारा की जड़ में पूंजीवाद का ज़बरदस्त प्रभाव दिखता है और नीतियां आम जनता के वास्तविक अधिकारों को उपेक्षित करते हुए पूंजीपतियों को प्रोत्साहित करती हुई प्रतीत होती है।

यह अत्यंत खेदजनक स्थिति रही है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया दिखने में बहुत ही सहज और रचनात्मकता लगती हैं, लेकिन वास्तविक स्थिति ठीक इसके उलट है। भूमंडलीकरण को

लेकर यह प्रचारित किया गया कि यह सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था को दुनिया की अन्य अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत कर मानव जीवनों के जोखिमों को कम करके सहज बनाने का काम करती है। तकनीक, सुरक्षा, वस्तुओं, सेवाओं, और मानव जीवन को समृद्ध बनाने वाली सूचनाओं का आदान-प्रदान बिना किसी रोक-टोक के सीमाओं के बाहर स्वतंत्रतापूर्वक करते हुए मुक्त व्यापार की नीतियों के ज़रिए, सभी देशों के लिए लाभदायक वातावरण का निर्माण करती है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि वैश्विक आर्थिक संबंधों ने सभी देशों के मध्य आर्थिक सहयोग, साधनों की गतिशीलता,तकनीकी ज्ञान का लाभ, कार्य कुशलता में वृद्धि,आयात-निर्यात आदि उपायों के महत्व को बढ़ा दिया है,लेकिन इसका व्यापक लाभ आम जनता अथवा निचले क्रम तक नहीं पहुंच सका और दुनिया के अर्थतंत्र को जोड़ने की योजना ग़रीब और विकासशील देशों के लिए फायदेमंद साबित नहीं हुई। आर्थिक उदारीकरण के जरिए प्रतियोगिता को कुशलता और सभी के लिए लाभ का पर्याय माना गया लेकिन बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने बाजारों एवं संसाधनों पर एकाधिकार जमाते हुए स्थानीय छोटे उद्योगों एवं व्यवसाय की ज़मीन ही खींच ली।

भूमंडलीकरण प्रक्रिया का बड़ा दोष यह है कि धन का प्रवाह उच्च घनत्व से कम घनत्व की ओर नहीं होता है बल्कि एक बड़ी पूंजी वाली व्यवस्था छोटी आर्थिक व्यवस्था को निगल जाती है और फिर क़र्ज़ के ज़रिए उसको एक ऐसे चक्रव्यूह में उलझा दिया जाता है जिससे निकलना मुश्किल हो जाता है। देश की आय का बड़ा हिस्सा ब्याज के



रूप में भुगतान किया जाता है और पूरी व्यवस्था पूंजीपतियों पर केन्द्रित हो जाती है, फलस्वरूप आर्थिक असमानता की एक ऐसी खाई का निर्माण होता है जिसे समाप्त करना लगभग असंभव हो जाता है। वैश्वीकरण मूल रूप से पूंजीवाद के साये में घटित शोषण का ही पर्याय है, जिसमें ग्लोबलाइजेशन की आड़ में राष्ट्रीय घरेलू अर्थव्यवस्थाओं को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ा जाना,सही मायनों में पूंजीवाद आधारित व्यवस्था को अमलीजामा पहनाना है।

आर्थिक उदारीकरण के तीस वर्षों के दौर की विवेचना की जाएं तो समृद्धि केवल सीमित हाथों में पहुंचती है और गैर-बराबरी में तेज़ गति से वृद्धि होती है। अमीरों की संपत्तियों एवं आय में बेतहाशा इज़ाफ़ा हो रहा है और ग़रीबों की आय में संकुचन एवं उनके लिए आर्थिक विकल्प निरंतर कमज़ोर पड़ते जा रहें हैं।

आर्थिक उदारीकरण का दौर, वास्तव में एक असंतुलित आर्थिक प्रणाली है। इससे व्यवस्था में अस्थिरता तथा उतार-चढ़ाव बना रहता है। वर्ष 2008-2009 के वित्तीय संकट ने वैश्विक उदारवादी आर्थिक व्यवस्था को जबरदस्त रूप से प्रभावित किया। बड़ी-बड़ी उदारवादी अर्थतंत्र के पास भी संकट से उबरने के विकल्प बहुत ही सीमित दिखें और इस अवधि में वैश्विक आर्थिक विकास दर लुढ़क कर बमुश्किल 1 से 2 प्रतिशत तक रह गई थीं। इस आर्थिक संकट ने अमीरों की बजाए गरीब तबकों को कहीं अधिक नुक़सान पहुंचाया था। इस संकट से उबरने में वैश्विक अर्थजगत लंबे समय तक जूझता रहा। अब तक मिलें अनुभवों से यह स्पष्ट हो चुका है कि एकीकृत वैश्विक आर्थिक विकास के प्रभावों से प्रति व्यक्ति आय तो बढ़ रही है, लेकिन गरीबी उन्मूलन कवायदों के प्रति दुर्बल इच्छाशक्ति, कार्यसाधकता और योजनाएं पर्याप्त नहीं है। एकीकृत वैश्विक आर्थिक विकास का स्वभाव प्रगतिशील तो है लेकिन समाज के सभी तबकों के विकास में अक्षम है।

कोरोनाकाल में असमानता की विभीषिका को प्रस्तुत करतीं वर्ष

2020 की ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट 'द इनइक्वैलिटी वायरस' इस बात की ओर इशारा कर रही है कि कोरोना महामारी ने पूरी दुनिया में आर्थिक असमानता को बढ़ाया है और भविष्य में वैश्विक स्तर पर कहीं अधिक आर्थिक असमानता में बढ़ोत्तरी की है। ऑक्सफेम ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि महामारी की शुरुआत से दुनिया के 10 सबसे अमीर लोगों की संपत्ति में जो बढ़ोतरी हुई है, वो 'वायरस की वजह से दुनिया के किसी भी व्यक्ति को गरीब होने से रोकने और सभी लोगों की कोरोना वैक्सीन की लागत देने के लिए' पर्याप्त है। कोरोना वायरस प्रसार के मामले में भी अमीरी-गरीबी का भेदभाव उभर कर सामने आया है। यूरोपिय देशों में श्वेत और अश्वेतों पर स्वास्थ्य नतीजों और कोविड-19 के प्रभाव का अंतर इस बात का संकेत है कि आर्थिक असमानता का लोगों के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।

कोरोना के प्रभावों से ठप्प पड़े काम-धंधे के कारण गरीबों की संख्या बढ़कर 50 करोड़ हो गई है। 6 करोड़ और लोगों को भीषण गरीबी में पहुंचने की संभावना जताई जा रही है। गरीबों की आर्थिक स्थितियों में गिरावट इतना बड़ा हुआ है कि कोरोना से पहले गरीबों की जैसी स्थिति थी उस स्थति में वापस आने में उनको एक दशक तक का समय लग सकता है। परंतु ग़रीबों की स्थिति के ठीक उलट विशेष बात यह है कि कोरोना के दौरान नौ महीनों में दुनिया के सबसे बड़े एक हज़ार अरबपतियों की आर्थिक स्थितियों में सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं, जबकि अचानक से हुए संपूर्ण लॉकडाउन के बाद लाखों प्रवासी मजदूरों के समक्ष जीविकापार्जन के साधनों को लेकर भारी संकट रहा है। उन्हें अपने क्षेत्र में लौटने के लिए विवश होना पड़ा। प्रवासी मजदूरों के लिए वापसी का सफ़र किसी भी दृष्टिकोण से सहज नहीं रहा। मज़दूरों को सैकड़ों किलोमीटर तक पैदल यात्रा करना पड़ा और इस विभिषिका में सैकड़ों मजदूरों की मौत हो गई।

भारत में आर्थिक उदारीकरण के बाद चकाचौंध में बढ़ोतरी हुई लेकिन इसी के साथ आर्थिक असमानताओं की रफ़्तार भी बेलगाम होती दिखीं। देश में सबसे अमीर एक प्रतिशत लोगों के पास सबसे गरीब 95.3 करोड़(70 प्रतिशत) लोगों की संपत्ति से भी अधिक संपत्ति है। भारत के 63 अरबपतियों की कुल संपत्ति वित्त-वर्ष 2018-19 के केंद्रीय बजट से ज्यादा है, जो 24,42,200 करोड़ रुपये था। आर्थिक उदारीकरण ने कृत्रिम चमक ख़ूब बिखेरी लेकिन अर्थव्यवस्था को भीतर से मज़बूत नहीं बना सकीं। विपरित परिस्थितियों में अर्थव्यवस्था अपना संतुलन नष्ट करने लगती है।

आक्सफेम की वर्ष 2020 की रिपोर्ट के अनुसार,कोरोना महामारी के दौरान देश में 12.20 करोड़ लोग बेरोज़गार हुए,जिसमें 75 प्रतिशत लोग असंगठित क्षेत्र से जुड़े हुए थें। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि कोरोना वायरस के चलते लगाए गए लॉकडाउन के दौरान भारतीय अरबपतियों की दौलत में 35 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जबकि इसी दौरान करोड़ों लोगों के लिए दो जून की रोटी भी जुटाना मुश्किल हो गया और सकल घरेलू उत्पाद की दर नकारात्मक हो गई। भारत के शीर्ष 100 अरबपतियों की संपत्ति में मार्च 2020 के पश्चात् से लगभग 13 लाख करोड़ रुपए की बढ़ोतरी दर्ज हुई। यह रकम भारत के रक्षा बजट का कई गुना है। जबकि रिपोर्ट में कहा गया कि महामारी के दौरान भारत के 11 शीर्ष अरबपतियों की आय में जितनी बढ़ोतरी हुई है,वह मनरेगा और स्वास्थ्य मंत्रालय के एक दशक तक के मौजूदा बजट के समतुल्य है।

वैश्वीकरण के पश्चात् लैंगिक असमानता में बढ़ोतरी दर्ज होती रही है और कोरोनाकाल में लैंगिक असमानता पूरी तरह से सतह पर आ गई। महामारी के दौरान महिलाओं में बेरोजगारी दर 15 फीसदी से बढ़कर 18 फीसदी हो गई। महिलाओं की बेरोजगारी में बढ़ोतरी से भारत की सकल घरेलू उत्पाद में लगभग आठ प्रतिशत,यानी 218 अरब डॉलर का ह्रास हुआ है। ऑक्सफैम

इसमें कोई संदेह नहीं है कि वैश्विक आर्थिक संबंधों ने सभी देशों के मध्य आर्थिक सहयोग, साधनों की गतिशीलता, तकनीकी ज्ञान का लाभ, कार्य कुशलता में वृद्धि, आयात-निर्यात आदि उपायों के महत्व को बढ़ा दिया है,लेकिन इसका व्यापक लाभ आम जनता अथवा निचले क्रम तक नहीं पहुंच सका और दुनिया के अर्थतंत्र को जोड़ने की योजना ग़रीब और विकासशील देशों के लिए फ़ायदेमंद साबित नहीं हुई।

की रिपोर्ट के मुताबिक, महिलाओं के संदर्भ में असाधारण ग़ैर बराबरी दिखाई देती है, एक टेक्नोलॉजी कंपनी के शीर्ष कार्यपालक अधिकारी की आय जितनी एक वर्ष में होती है,उतना कमाने में एक घरेलू महिला कर्मचारी को 22,277 वर्ष लग सकतें है।रिपोर्ट के अनुसार विडंबना यह भी है कि महिलाएं और लड़कियां प्रतिदिन संयोजित रूप से 3.26 अरब घंटे बिना किसी भुगतान के कार्य निष्पादित करती हैं। इस कार्य का भारतीय अर्थव्यवस्था में सहयोग प्रति वर्ष लगभग 19 लाख करोड़ रुपये है।

ऑक्सफ़ैम इंडिया के मुख्य कार्यकारी अधिकारी अमिताभ बेहार का कहना है कि, "हालांकि कोरोना वायरस के बारे में शुरू में कहा गया था कि यह सबके लिये समान स्थिति है,लेकिन लॉकडाउन लगाए जाने के बाद धनी और ग़रीब के बीच का अंतर इसमें अधिक स्पष्ट दिखने लगा। ऑक्सफ़ैम इंटरनेशनल की कार्यकारी निदेशक की गैब्रिएला बूचर ने रिपोर्ट में कहा, "धनी और ग़रीबों के बीच का विभाजन उतना ही ख़तरनाक है जितना ख़तरनाक वायरस है। आर्थिक असमानता में बढ़ोत्तरी के आधार पर एक आदर्श समाज की कल्पना का अस्तित्व कमज़ोर दिखता है और समाजिक ताने-बाने में नकारात्मक प्रभाव उभरते हैं, जिसका आभास ईर्ष्या, दंगे-फसाद, कटुता, वैमनस्यता के प्रसार और सामुदायिक संघर्ष के रूप में सामने आ रहा है। आर्थिक असमानता लोगों के मनोविज्ञान को प्रभावित करता है और कुंठा को जन्म देता है, जो कि एक नैतिक विकार है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि कुंठित समाज में सुख, शांति और संपन्नता का परिचायक नहीं हो सकता।

अभी तक आर्थिक उदारीकरण के जो प्रभाव सामने आएं हैं,उस आधार पर उदारवाद दोयम अस्तित्व को प्रदर्शित करता है और सबसे बड़ी समस्या यही है कि आर्थिक असमानताओं के उन्मूलन के प्रति बहुत कम देशों की सरकारें ही प्रतिबद्ध हैं। इस आधार पर यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अब उदारवाद आधारित व्यवस्था के मूल सिद्धांत न्यायिक और तर्कसंगत नहीं रह गए हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में फासिस्ट, दक्षिणपंथ और धार्मिक उन्माद शक्तियों का उदय होना इस बात का घोतक है कि अब उदारवाद अनिश्चित भविष्य का सामना कर रहा है और इसके सम्मुख अतिराष्ट्रवादिता जबरदस्त चुनौतियां प्रस्तुत कर रही है। ■■





बिका हुआ मीडिया और ग़ुलाम पत्रकार

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ इसलिए कहा गया कि यह एक सजग प्रहरी की तरह जनता के अधिकारों की रक्षा के लिए अवाज़ उठाता है। इसके साथ सरकार और प्रशासन में मौजूद विसंगतियों, ख़ामियों और घोटालों को उजागर कर व्यवस्था पर कर्तव्यों के प्रति जवाबदेह रहने का दबाव बनाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो मीडिया का काम सरकार और व्यवस्था से सवाल कर एक स्वस्थ विपक्ष की भूमिक निभाना भी है। समय के साथ समाज और राजनीति में आयी गिरावट का असर मीडिया पर भी हुआ, लेकिन इसका बड़ा वर्ग अपनी ग़लतियों की समीक्षा कर अपनी ज़िम्मेदारी के प्रति एक स्तर तक सजग भी था।

मीडिया की निष्पक्षता का तेज़ी से पतन हुआ 2014 के बाद, जब दबाव या लालच में इसका चाल, चरित्र और चेहरा पूरी तरह बदल गया।

जन-गण-मन



मुहम्मद यूसुफ़ 'मुन्ना'

आम जनमानस ने मीडिया में इस स्तर तक बदलाव की उम्मीद नहीं की थी। आज़ादी की जंग में इंक़िलाबी भूमिका निभाने वाले मीडिया के अधिकांश हिस्से पर सत्ता और पूंजीवाद का तेज़ी से प्रभाव बढ़ा, जिसको वरिष्ठ पत्रकार रविश कुमार ने 'गोदी मीडिया' का नाम देकर उसके 'चरित्र' की अक्कासी है। यह भी विडम्बना ही है कि वर्तमान में भारतीय मीडिया स्पष्ट रूप से दो भागों में विभाजित दिख रहा है और उसी का एक भाग गोदी मीडिया के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाता दिख रहा है। आज का पत्रकार वैसा लिखता और दिखाता नज़र आता है जैसा मीडिया मालिक चाहते हैं। इन मीडिया मालिकों की लगाम सियासी हाथों में है।

यही कारण है कि गोदी मीडिया सत्ता के आलोचकों, विरोधियों, विपक्ष और सत्ता विरोधी आंदोलनों के ख़िलाफ़ नकारात्मक और दुष्प्रचारक सामग्री परोसता है। जैसे वर्तमान आंदोलनकारी किसानों को ख़ालिस्तानी और नक्सली के रूप में प्रचारित कर उनकी जायज़ मांगों पर कुठाराघात कर रहा है। मोदी सरकार द्वारा जारी दो हज़ार के नोट में चिप होने की ख़बर फैलाने वाला मीडिया किसान नेताओं की छवि लगातार ख़राब कर रहा है। मीडिया का ठीक यही रवैया सीएए-एनआरसी विरोधी आंदोलन के समय भी था। मीडिया किसान बिल और सीएए-एनपीआर की ख़ामियों पर चर्चा करने की जगह आंदोलनों पर ही सवाल

उठाने और उसको देशविरोधी ठहराने की ग़ुलामी करता नज़र आया।

पिछले दिनों गोदी मीडिया ने सवा सौ करोड़ की आबादी वाले देश में मात्र 12, 232 लोगों के बीच एक सर्वे कर दावा किया कि देश की 64 फ़ीसदी जनता वर्तमान मोदी सरकार के प्रदर्शन से संतुष्ट हैं। इस कथित सर्वे में कहा गया कि अगर अभी लोकसभा चुनाव होता है, तो एनडीए को 43 फ़ीसदी वोट मिलेगा और उसको 321 सीटें मिलेंगी। यह दावा उस समय किया जा रहा है, जब विपक्ष सत्ता पक्ष पर ईवीएम बदल कर चुनावों में धांधली करने का आरोप लगाता रहा है।

इस सर्वे के दावों की पड़ताल करें तो गोदी मीडिया की भूमिका पर एक बार फिर गंभीर सवाल खड़े होते हैं। अगर देश के 64 लोग मोदी या एनडीए सरकार के प्रदर्शन से संतुष्ट हैं, तो उसको सिर्फ़ 43 फ़ीसदी ही वोट क्यों मिलेगा? इस सरकार में क़रीब साढ़े तीन लाख कंपनियां बन्द हो चुकी हैं। भारत एशिया का सबसे ज़्यादा बेरोज़गारी वाला देश बन गया। गोदी मीडिया के सर्वे में इन लोगों को भी सरकार के काम-काज से संतुष्ट बताया गया है।

पेट्रोल-डीजल के दाम शतक लगा रहे हैं। रुपया गिर रहा है। लोगों की आय कम हो गयी। लॉकडाउन में बची-खुची नौकरियां भी चली गयीं। गृहणियां पहले जो सरसों तेल 90 रुपये लीटर ख़रीदती थीं, अब 150 रुपये लीटर ख़रीद रही हैं। स्कूल बंद होने से बच्चे हद से ज़्यादा मोबाइल गेम खेल रहे हैं। विधायक ख़रीदे जा रहे हैं। बैंक डूब रहे हैं। बैंकों के बचत खाते पर ब्याज़ दर कम कर दिया गया। पीएफ की जमापूंजी पर टैक्स लगा दिया गया। किसान कड़ाके की ठंड में आंदोलन कर रहे हैं। मीडिल क्लास

यही कारण है कि गोदी मीडिया सत्ता के आलोचकों, विरोधियों, विपक्ष और सत्ता विरोधी आंदोलनों के ख़िलाफ़ नकारात्मक और दुष्प्रचारक सामग्री परोसता है। जैसे वर्तमान आंदोलनकारी किसानों को ख़ालिस्तानी और नक्सली के रूप में प्रचारित कर उनकी जायज़ मांगों पर कुठाराघात कर रहा है।

का एक बड़ा वर्ग ग़रीबी रेखा के नीचे चला गया। सरकारी संपत्तियों को चुनिंदा पूंजीपतियों को बेचा जा रहा है। आरक्षण ख़त्म हो रहा है। कोविड स्पेशल के नाम पर ट्रेनों का किराया बढ़ा दिया गया। लॉकडाउन में मज़दूरों को पैदल सैकड़ों किमी यात्रा कर अपने घरों को जाना पड़ा, जिससे क़रीब 270 मज़दूरों की मौत हो गयी।

क्या गोदी मीडिया ने अपने सर्वे में इन मुद्दों पर सरकार के बारे में लोगों की राय जानने की कोशिश की? नहीं, लेकिन उसने अपने पेड सर्वे में इन सारे लोगों को सरकार के कामकाज से पूरी तरह संतुष्ट बता दिया। इसके अलावा महाराष्ट्र पुलिस ने गोदी मीडिया के फ़र्ज़ी टीआरपी के खेल उजागर कर उसका एक और काला चरित्र जनता के सामने रखा। इस खेल के खिलाड़ी सत्ता की आड़ में छिप कर क़ानूनी कार्रवाई से बचने की कोशिश करते नज़र आ रहे हैं। मीडिया सरकार का प्रचार होर्डिंग बना हुआ है। उसकी ग़लत नीतियों पर या तो वह चुप है या भ्रामक ढंग से उसको जनता के हित में बताता है। गोदी मीडिया सत्ता की जगह जनता और विपक्ष से सवाल पूछता है।

इसके विपरीत मीडिया का वह भाग जो अपनी निष्पक्षता बचाए रखने के लिए संघर्ष कर रही है, उसको कई तरह की चुनौतियों का सामना है। पिछले कुछ सालों का इतिहास देखें तो कई निष्पक्ष पत्रकारों को चैनलों से बाहर का रास्ता दिखा दिया गया। एनडीटीवी समेत कई चैनलों के प्रसारण को अलग-अलग स्थानों पर कई बार बाधित किया गया। सच दिखाने पर पत्रकारों के ख़िलाफ़ मुक़दमे लिखने और उनको जेल भेजने की घटनाएं बढ़ गयी। हाथरस में दलित लड़की के रेप, प्रधानमंत्री के गोद लिए गांव की सच्चाई, आंदोलनकारी किसानों पर पुलिस दमन की सच्चाई दिखाने पर जहां अनेक पत्रकारों को जेल जाना पड़ा, वहीं आत्महत्या के लिए मजबूर करने जैसे गंभीर मामले में आरोपी होने के बाद भी अर्नब गोस्वामी को आसानी से ज़मानत मिल गयी।

दिल्ली पुलिस ने 'दि कारवां' मैग्जीन के ख़िलाफ़ किसान आंदोलन के संदर्भ में भ्रामक और झूठी ख़बर फैलाने के आरोप में मुक़दमा दर्ज किया। सिंघु बार्डर से एक स्वतंत्र पत्रकार मनदीप पुनिया को गिरफ़्तार किया गया। इसको लेकर विपक्षी कांग्रेस ने मोदी सरकार की आलोचना करते हुए कहा कि जो लोग सच्चाई से डरते हैं, वे ईमानदार पत्रकारों को गिरफ़्तार करते हैं। मृणाल पांडे, राजदीप सरदेसाई, विनोद जोस, ज़फ़र आग़ा, परेश नाथ और अनंत नाथ के ख़िलाफ़ देशद्रोह का केस दर्ज किया गया। सत्ता और एक संगठन विशेष के ख़िलाफ़ लोगों की आवाज़ को दबाने के लिए हर तरीक़े अपनाये जा रहे हैं। अभिव्यक्ति की आज़ादी के लोकतांत्रिक आवाज़ का गला घोटा जा रहा है। ■■



हुमा मसीह
नई दिल्ली

स्त्री मुक्ति के नाम पर

कपड़ा विमर्श

जब भी कभी स्त्री सशक्तिकरण की बात होती है तो अक्सर लोगों का विमर्श औरतों के कपड़ों पर आकर ठहर जाता है। हम चाहे आधुनिक लिबरल और नारीवादी कहे जाने वाले लोगों की बात करें या धार्मिक तबकों में किए जाने वाले विमर्श की। कपड़े ही केंद्र होते हैं और केंद्रीय विषय विलुप्त हो जाते हैं।



किसी विषय पर जब हम बात करते हैं तो यह प्राथमिकता होनी चाहिए कि उस विषय के कल्याणकारी बिंदुओं पर चर्चा हो और बाकी मुद्दे उसके बाद लाए जाएं लेकिन स्त्री विमर्श में कपड़े की प्राथमिकता दिखाई देती है और पूरे विमर्श में एक ख़ास वर्ग को उनके कपड़ों को लेकर कटघरे में खड़ा कर दिया जाता है।

हम इस बात को समझने के लिए कुछ घटनाओं के उदाहरण ले सकते हैं। जब शाहीन बाग़ आंदोलन चल रहा था तब लिबरल और नारीवादी कही जाने वाली महिलाएं और लेखिकाएं बार-बार यह बात कह रही थीं कि मुस्लिम औरतों ने वाकई अच्छा काम किया है लेकिन अब उन्हें अपने हिजाब और बुर्के से भी आज़ाद हो जाना चाहिए। उन नारीवाद की ब्रांड एम्बेसेडर्स के विमर्श का सीधा-सीधा अर्थ ये था कि महिला अगर मुस्लिम हो तो उसके विचार, उसका संघर्ष, उसकी क्रांति कोई ख़ास मायने नहीं रखती जब तक कि वे नारीवाद के पोशाक विमर्श के अनुसार कपड़े न पहनें।

आज़ादी पर जब भी चर्चा की जाती है तो यह बात ज़रूर की जाती है कि आज़ाद वो है जिसकी सोच आज़ाद है। चाहे वो कोई हो, किसी भी धर्म, भाषा, पोशाक या संस्कृति से सम्बन्ध रखता हो। शाहीन बाग़ आंदोलन को शुरू करने वाली महिलाएं वह थीं जिन्होंने अपनी सोच के आज़ाद होने की गवाही सड़कों पर संघर्ष की शुरूआत कर के दिया था और वह महिलाएं उसी आज़ादी को सेलिब्रेट कर बुर्का और हिजाब भी पहनती थीं।

स्त्री विमर्श जब कपड़ा विमर्श बन

जाता है तो उसमें भी गहराई में जाकर ईमानदारी से विश्लेषण करना चाहिए न कि किसी एक वर्ग को उनकी मर्ज़ी से अपनाए गए लिबास को निशाना बनाया जाना चाहिए। जब स्त्री विमर्श का नाम लेकर कपड़ों पर बहस की जाती है और फिर बुर्क़ा और हिजाब तक बात चली जाती है और यह कहा जाता है कि जो हिजाब थोपा गया है उससे भी मुक्ति होनी चाहिए तो उस समय यह ज़रूरी होता है कि इसपर भी बात हो कि कौन से कपड़े किस पर थोपे गए हैं और कौन अपने कपडों को दूसरे की मर्ज़ी से अपने बदन पर ढ़ो रहा है।

मैं ऐसे कई परिवार को जानती हूं कि जहां लड़कियां जीन्स पहनना नहीं चाहतीं लेकिन उनके मां बाप द्वारा इसे थोपा जाता है, कई लड़कियां जीन्स पहनना चाहती हैं लेकिन उनके घर वाले नहीं पहनने देते, बहुत सी कामकाजी औरतें अपने ऑफिस पारंपरिक कपड़े पहनकर जाना चाहती हैं लेकिन ऑफिस वाले उनपर खास तरह के कपड़े थोपते हैं। विभिन्न धर्म, आस्था, आस्तिक और नास्तिक महिलाएं किसी न किसी के द्वारा उनपर कपड़े थोपे जाने से परेशान हैं। किसी पर कपड़े मां-बाप थोपते हैं, कहीं ऑफिस वाले, कहीं स्कूल व कालेज, कहीं भाई तो कहीं पति और इन सब पर बाज़ार अपनी पसंद को थोपता है लेकिन स्त्री मुक्ति और स्त्री विमर्श की नायिकाएं कपड़ों के विमर्श में केवल बुर्के यानी मुसलमानों को ही लाती हैं जो बहुत ही पक्षपाती रवैया है।

स्त्री मुक्ति की बात करने वाले लोग अक्सर कहते हैं कि मुस्लिम महिलाओं को बुर्के और हिजाब में कैद कर दिया गया है। हालांकि, शाहीन बाग़ आंदोलन ने यह साबित किया है कि बुर्का, हिजाब या दुनिया की कोई भी पोशाक किसी को कैद नहीं करती है। हो सकता है हिजाब पहनने वाली महिलाओं को आधुनिक कहे जाने वाले कम कपड़ों में औरतें बाज़ारवाद की क़ैदी नज़र आती हों? इस बात पर विमर्श होना चाहिए।

स्त्री मुक्ति के ध्वजवाहक जो यह कहते हैं कि हिजाब पहनने वाली महिलाएं कैद हैं वो लोग असल में खुद अपनी सोच के सीमित दायरे में कैद हैं। हिजाब पहनने वाली महिलाओं ने बिना हीन भावना के शिकार हुए संविधान बचाने की लड़ाई में भी अपनी हिजाबी पहचान के साथ संघर्ष किया। तथाकथित नारीवादियों की मानसिकता का आलम यह है कि इन्हें साड़ी और बिंदी तो चॉइस के तौर पर क़बूल है लेकिन अपनी चॉइस से हिजाब या बुर्का पहनने वाली मुस्लिम महिलाओं का चुनाव इनकी नज़रों में ग़ुलामी है।

मूल समस्या तो असल में एक संकुचित दायरे में किसी को कुछ समझा दिया जाना है, जो लोग खास तौर से नारीवादी महिलाएं जो मुस्लिम महिलाओं की कंडीशनिंग की बात करते हैं उनकी कंडीशनिंग ख़ुद बाज़ार करता है, क्योंकि बाज़ार ने उन्हें समझा दिया कि फलां कपड़ों में वो हॉट या कूल दिखेंगी. उन्हें समझा दिया गया हैं कि खास तरह की पोशाक में महिलाएं आकर्षक दिखेंगी और एक महिला के लिए आकर्षक दिखना बहुत ज़रूरी है इसलिए बाज़ार ने जो कपड़े सुझाये वो उनके लिए आधुनिक हो गया। इस बात पर कोई विमर्श नहीं होता कि आधुनिकता पोशाक करेगी या विचार?

कई महिलाएं ऐसी होती हैं जिनकी पोशाक उनका व्यक्तिगत निर्णय होती हैं और बहुत-सी महिलाएं के लिए कई बार ये फ़ैसला करने वाला परिवार या समाज या बाज़ार होता है। अगर फ़ैसला करने का काम कोई और कर रहा है तो बेशक ये ग़लत है चाहे आप बुर्का पहने, साड़ी पहने या जीन्स या स्कर्ट।

अगर किसी महिला से कहा जाए कि आपको हिजाब लगाना ही पड़ेगा या आपको हिन्दू बहू होने के नाते साड़ी पहननी ही पड़ेगी या आपको हमारे लिबरल ग्रुप में स्वीकृति हासिल करने के लिए ख़ास कपड़े ही पहनने होंगे तो यह अतिवाद कपड़ों का नहीं बल्कि सोच का है। इस अतिवाद की सोच के शिकार आपको धार्मिक लोगों के साथ-साथ ख़ुद को लिबरल और नारीवादी कहने वाले लोग भी मिल जाएंगे।

अगर हम धार्मिक खेमों में औरतों को लेकर किए जाने वाले विमर्श की बात करें तो इसी नतीजे पर पहुंचेंगे कि औरत का वजूद जिसमें विचारधारा को सबसे अहम होना था वहां ये धार्मिक लोग भी महज़ कपड़ों की बुनियाद पर संपूर्ण स्त्री विमर्श लागू करने को तैयार बैठे हैं। कोई महिला कितनी ही क़ाबिल और ज़हीन ही क्यों न हो ये धार्मिक तबक़ा सबसे पहले कपड़ों के आधार पर उस महिला को जज करता है। उसके कैरेक्टर को तय करता है।

ऐसा मालूम होता है हर तरफ़ स्त्री विमर्श के नाम पर पोशाक विमर्श का एक दस्तावेज़ तैयार किया जा रहा है। रविन्द्र नाथ टैगोर ने अपनी कविता में भय मुक्त समाज की कल्पना करते हुए कहा है कि Where The Mind is Without Fear...जहां किसी चीज़ का भय नहीं होता वहां सभी लोग सम्मान पाते हैं और आत्मसम्मान के साथ जीते हैं। महिलाओं को जब दूसरों द्वारा जज करने का भय नहीं रहेगा तो सम्मान से अपने अधिकारों के लिए उठ खड़ी होंगी, जिस 'स्त्री विमर्श' में औरत का सम्मान सर्वोपरि न हो वो विमर्श व्यर्थ है।

■■

महिला दिवस
पर विशेष



हज़रत ख़दीजा :
महिला सशक्तिकरण की अद्भुत मिसाल

ख़ालिदा हुसैन
नई दिल्ली

"उन्होंने अपने रास्ते की हर रुकावट को गिरा दिया, यहां तक कि आज की महिलाएं भी वह सब करने की इच्छा रखती होंगी, जो उन्होंने आज से 1400 वर्ष पूर्व कर दिखाया।" ब्रिटेन के शहर, मेनचेस्टर के एक इमाम 'हसन ज़मान' के ये शब्द "हज़रत खदीजा" के बारे में थे।

उन्हें समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। वह बहुत धनी तथा प्रभावशाली महिला थीं, जो कई पुरुषों द्वारा दिए गए विवाह के प्रस्तावों को ठुकरा चुकी थीं। उनकी दो शादियां हो चुकी थीं। एक पति का निधन हो चुका था, और दूसरे पति के बारे में कहा जाता है कि, हजरत खदीजा ख़ुद उनसे अलग हो गई थीं। उन्होंने यह तय कर लिया था कि, अब वह शादी नहीं करेंगीं। लेकिन उनका यह निर्णय उस समय बदल गया जब वह उस व्यक्ति से मिली जो आगे चलकर उनके तीसरे पति बने। इमाम ज़मान का कहना है कि, उन्होंने उस व्यक्ति के व्यक्तित्व में ऐसी विशेषताएं देखीं कि, उनका शादी ना करने का फैसला बदल गया।

दरअसल उन्होने अपने तीसरे विवाह के लिए हज़रत मुहम्मद का चयन किया। उन्होंने स्वयं उन्हें शादी का प्रस्ताव दिया। उस समय उनकी ख़ुद की आयु 40 वर्ष और हज़रत मुहम्मद की उम्र 25 वर्ष थी।

हजरत खदीजा ने हज़रत मुहम्मद से उस समय शादी की थी जब उन्होंने अपनी पेगंबरी का ऐलान नहीं किया था। न्यू यॉर्क यूनिवर्सिटी के इतिहास के पूर्व प्रोफेसर 'रॉबर्ट होलेंड 'कहते हैं कि, "हज़रत खदीजा के व्यक्तित्व का विस्तारित वर्णन बहुत कठिन है, इसका एक मुख्य कारण यह है कि उनके बारे में जो कुछ लिखा गया वह उनके निधन के काफी वर्षों बाद लिखा गया।" बीबीसी से एक बातचीत में उन्होने कहा कि, "अधिकांश ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार वह एक स्वतंत्र फैसले लेने वाली तथा एक मजबूत इरादों वाली महिला थीं। इसका एक उदाहरण यह है कि, उन्होंने अपने कज़िन से शादी करने से इनकार कर दिया था, जबकि उनका खानदान रीति-रिवाजों के अनुसार इस रिश्ते की हिमायत में था। लेकिन वह अपने पति का चयन स्वयं करना चाहती थीं।

हज़रत ख़दीजा एक संपन्न व्यापारी की बेटी थीं, जिसने अपने पारिवारिक व्यापार को एक व्यापारिक साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया था। युद्ध में पिता की मृत्यु के बाद खदीजा ने व्यापार संभाल लिया। बीबीसी की एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म में 'मोरीख़ रूस' ने कहा कि, "उन्हें स्वयं अपने तौर पर दुनिया में आगे बढ़ना आता था"। मौरिख़ के अनुसार उनकी व्यापारी बुद्धिमत्ता ने ही उन्हें उस मार्ग पर चलाया जिसने आगे चलकर विश्व इतिहास को बदल कर रख दिया। हज़रत खादीजा मक्का में जो व्यापार करती थीं, उसके लिए उनके व्यापारिक काफ़िले ,पूर्व के बड़े शहरों में अपनी यात्रा करते थे। यह व्यापारिक काफ़िले लंबे सफर तय करके दक्षिणी यमन और उत्तरी शाम जैसे देशों तक जाया करते थे।

न्यू यॉर्क यूनिवर्सिटी में इस्लामी इतिहास की एसोसिएट प्रोफेसर 'फोज़िया बोरे बताती हैं कि, "हालांकि उनकी दौलत का एक बड़ा हिस्सा उन्हें विरासत में मिला लेकिन उनकी स्वयं की कोशिशों के कारण ही उनका व्यापार बहुत अधिक संपन्न हुआ था।" प्रोफेसर फोज़िया कहती हैं कि,"वह खुद भी व्यक्तिगत तौर पर एक कामयाब व्यापारिक महिला थीं, जिनमें बहुत अधिक आत्मनिर्भरता थी। वह अपने विभिन्न व्यापारिक कार्यों के लिए लोगों की सेवाएं प्राप्त करती थीं। फिर उन्हें एक ऐसे व्यक्ति के बारे में जानकारी मिली, जिसकी लोगों के बीच ईमानदार और मेहनती होने के कारण काफ़ी प्रसिद्धि थी।

हजरत खदीजा ने उस व्यक्ति से संपर्क किया, और उनसे अपने एक व्यापारिक काफिले का नेतृत्व करने को कहा। जल्द ही वह उस व्यक्ति की ओर आकर्षित हो गई। वह इस्लाम के पैगंबर मोहम्मद से इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने उनसे विवाह करने का फैसला कर लिया। इस विवाह से मोहम्मद को भी अत्यंत लाभ हुआ। उन्हें इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए वित्तीय सहायता मिली। कहा जाता है कि उनके यहाँ चार संतान हुई, लेकिन उनमें से केवल एक बेटी ही जीवित रही। मुस्लिम यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन की एक प्रोफेसर 'रानीया हाफ़िज़' कहती हैं कि, "अगर सामाजिक व्यवस्था की बात करें तो उस दौर में एक व्यक्ति कई कई शादियां करता था, लेकिन जब तक हज़रत खातीजा जीवित रहीं, हज़रत मोहम्मद ने दूसरी शादी नहीं की। हज़रत खातीजा कि तरह हजरत मोहम्मद भी क़ुरैश जैसे उच्च ख़ानदान में जन्मे तथा पले-बढ़े थे। यह वह समय था जब ज्यादातर लोग कई मूर्तियों की पूजा किया करते थे। जब हज़रत मुहम्मद ने मक्का के पहाड़ों पर ध्यान और चिंतन करना शुरू किया जब तक उनकी शादी को कई वर्ष बीत चुके थे। इसी दौरान जब उन्हें ईश्वर के दूत (फरिश्ता) जिबराइल, द्वारा 'वही' प्रकट हुई तब मोहम्मद ने फैसला किया कि वह इस घटना के बारे में किसी को बताए। उन्हें हजरत खदीजा पर बहुत विश्वास था, उन्होने उनकी बात सुनी और उन पर विश्वास करते हुए उन्हें दिलासा दिया। अमेरिका की हावर्ड यूनिवर्सिटी की इस्लामिक स्कॉलर 'लेला अहमद कहती हैं कि, जब हज़रत मुहम्मद पर वह्य (ईशवाणी) प्रकट होने की घटना घटी तोउनके लिए इस अनुभव को समझना मुश्किल था। इस मौके पर हज़रत ख़दीजा ने उनका साथ दिया।" कई इतिहासकारों की दृष्टि में, उतरने वाली आयतों को सबसे पहले हजरत ख़दीजा ने सुना था। इसीलिए वह इस्लामिक इतिहास की पहली मुस्लिम महिला बन गई और इस्लाम स्वीकार करने वाली पहली व्यक्ति। प्रोफेसर फ़ोजियाबोरे कहतीं हैं कि, उन्होंने इस्लाम के इस पैग़ाम को पूरे दिल से स्वीकार किया। मौरिख बेटनी रूस का कहना है कि, "मेरे विचार में हजरत ख़दीजा की सहायता से पैगंबर मोहम्मद को अपना उपदेश लोगों तक पहुंचाने और उनके कबीले के विरोध का सामना करने में बहुत मदद मिली। मौरिख कहती हैं कि, आगे 10 वर्षों तक हज़रत खातीजा ने अपने पारिवारिक संबंधों और अपनी धन-दौलत के माध्यम से अपने पति की पूरी पूरी मदद की। उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दिनों तक अपने पति और इस्लाम धर्म के पक्ष और सहायता के लिए सब कुछ किया जो उनके बस में था।

सन् 619 में वह बीमार हो गई और उनका निधन हो गया। उस समय मोहम्मद को पेगंबरी प्राप्त हुए 25 वर्ष हो चुके थे, और हजरत खदीजा से बिछड़ना उनके लिए एक अत्यंत गहरा सदमा था। प्रोफेसर हॉलैंड के अनुसार इतिहासकारों ने जिस तरह हज़रत खदीजा का उल्लेख किया है वह अत्यंत प्रभावित करने वाला है, और उन्हें उहज़रत मुहम्मद की एक बहुत अच्छी मित्र के रुप में बताया गया है।

प्रोफेसर फ़ोजिया बोरे का मानना है कि, "हज़रत खातीजा के इतिहास को जानना इसलिय भी जरूरी है क्योंकि वह समाज की उस परिकल्पना को गलत प्रमाणित करती है कि, इस्लाम के शुरुआती दौर में मुसलमान महिलाओं को घर तक सीमित रखा जाता था। पैगंबर मोहम्मद ने हजरत खदीजा को अपनी पसंद के काम करने से कभी नहीं रोका था। इतिहासकारों के अनुसार उस समय के लिहाज से इस्लाम में महिलाओं को ज्यादा अधिकार और सम्मान दिया गया।एक मुस्लिम होने के नाते मैं समझती हूं कि, हजरत ख़दीजा एक प्रभावशाली व्यक्तित्व कि मालिक थीं। इसी प्रकार पैगंबर की बेटी हज़रत फातिमा और दूसरी बीवी हज़रत आयशा भी ऐसे ही व्यक्तित्व में शामिल हैं। यह बुद्धिजीवी महिलाएं थी जिन्होंने राजनीति और इस्लामिक सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ब्रिटनी रूस ने स्कॉलर 'मैरियन फ्रांस्वा सेरा से प्रश्न किया कि, "अगर आप हज़रत ख़दीजा और हज़रत आयशा जैसी महान महिलाओं के बारे में सोचें तो आपके विचार में यह महिला आज 21वीं सदी में, इस्लाम के जो हालात हैं, उसके बारे में क्या कहतीं? मैरियन फ्रांस्वा सेरा ने उत्तर दिया -"जिस तरह आज इस्लाम का एक खास तरीके से, पालन किया जा रहा है, मुझे नहीं लगता कि ये महिलायें इसे इस्लाम की आत्मा कहतीं, और मुझे विश्वास है कि अगर हज़रत आयशा आज होती और उन्हें कहा जाता कि वह कमरे से बाहर ना निकले और अपनी राय का इज़हार ना करें तो ऐसी स्थिति से वह बिल्कुल नहीं ख़ुश होती। वह पुरुषों को सिखाती थी और उन्हें शिक्षा देती थीं और अगर उन्हें कुछ कहना होता था तो कह गुजरती थीं"। मेरीयन कहती हैं कि, "मुझे नहीं लगता कि अगर हज़रत ख़तीजा को सीमाओं तक सीमित कर दिया जाता तो उनकी आवाज को दबा दिया जाता था उनके अधिकारों का विरोध किया जाता तो वह सब स्वीकार कर लेतीं।" ■■



मीडिया

अख़लाक़ अहमद
देवरिया, यूपी

भारतीय मीडिया का चरित्र

आजकल अक्सर भारत की मुख्यधारा की मीडिया (इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिंट दोनों) को गोदी मीडिया, मृदंग मीडिया, भांड मीडिया, दलाल मीडिया, बिकाऊ मीडिया, दंगाई मीडिया यहां तक कि आतंकी मीडिया के ख़िताब से नवाज़ा जा रहा है। ये सारे "विशेषण" जो मीडिया के मौजूदा चरित्र की व्याख्या के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं, वे बहुत हद तक सच तो हैं मगर इनसे भारत की मुख्यधारा की मीडिया के मूल "मनुवादी चरित्र" का परिचय नहीं होता। हक़ीक़त ये है कि भारत की मुख्यधारा की मीडिया इन सबके साथ-साथ अपनी सरंचना से लेकर कार्य एवं व्यवहार तक में घोर मनुवादी है।

लोकतंत्र में मीडिया का प्रमुख कार्य लोकतंत्र के महत्वपूर्ण इदारों यथा-विधायिका, कार्यपालिका, न्याय-पालिका के कार्य एवं व्यवहार पर गहरी नज़र रखना, लोकतांत्रिक मूल्यों यथा-न्याय, समानता, स्वतन्त्रता, बंधुत्व, वैज्ञानिक/तार्किक चिंतन को बढ़ावा देना, अन्धविश्वास एवं सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के साथ-साथ अन्याय, असमानता, ग़ुलामी, भेदभाव, पूर्वाग्रह, अन्धविश्वास जैसे लोकतंत्र विरोधी और मनुवादी सिद्धांतों का भारतीय समाज से पूर्ण रूप से उन्मूलन का प्रयास करना है। अगर कहीं भी संविधान और क़ानून के ख़िलाफ़ कोई भी काम हो रहा है तो जनता को उसके बारे में त्वरित सूचना देना मीडिया की ज़िम्मेदारी है।

क्या मीडिया अपनी स्थापना के इन संवैधानिक और नैतिक उद्देश्यों का निर्वहन ईमानदारी से कर रहा है? इस सवाल का जवाब पाने के लिए किसी शोध की ज़रूरत नहीं है। कोई भी सामान्य बुद्धि का व्यक्ति जिसकी देश

की मीडिया पर नज़र है बड़ी आसानी से इस नतीजे पर पहुंच सकता है कि आज मीडिया अपने कर्तव्यों का निर्वहन तो दूर की बात, अपनी स्थापना के उद्देश्यों के ही ख़िलाफ़ काम कर रहा है। आप जनमानस तैयार करने वाले मुख्यधारा के मीडिया के तमाम साधनों यथा- टेलिविज़न, सिनेमा, अख़बार, पत्र-पत्रिकाओं, डिजिटल मीडिया यहां तक कि सोशल मीडिया के कार्यक्रमों, ख़बरों, लेखों, प्रकाशित सामग्रियों आदि को देखें तो आप इसी नतीजे पर पहुचेंगे कि भारत की मुख्यधारा की मीडिया मनुवादी सभ्यता-संस्कृति, संस्कारों, कर्मकांडों, सिद्धान्तों एवं मूल्यों को Justify करने, उसे समाज में मज़बूत करने, उसे Glorify करने के साथ-साथ इसका घोर प्रचारक भी है। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के असंवैधानिक और ग़लत कामों पर पर्दा डालना, उसे जाएज़ क़रार देने से आगे बढ़कर, उसका गुणगान करना यहां तक कि उसके फ़ेवर में जनमानस तैयार करना मीडिया का सबसे प्रमुख कार्य बन चुका है। वैज्ञानिक चिंतन की बजाए अन्धविश्वास और पाखंड, बंधुत्व की बजाए साम्प्रदायिक विद्वेष को बढ़ावा देना मीडिया का मूल चरित्र बन चुका है। सिर्फ़ इतना ही नहीं बल्कि ये मीडिया अब भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता के लिए भी ख़तरा बन चुका है।

सरकारी मीडिया जिसे जनता के पैसों से ही चलाया जाता है, वो ख़ुद जनता का विरोधी बन चुका है तो प्राइवेट मीडिया जिसके कार्य एवं व्यवहार का निर्धारण ही लाभ-हानि के गणित से होता है, उसके तो क्या कहने।

देश और इस देश की जनता के प्रति मीडिया का ये अपराध, इसे गोदी मीडिया या दलाल मीडिया या इस तरह के दूसरे विशेषणों का प्रयोग कर देने से Justify नहीं किया जा सकता। मीडिया जो कर रहा है वो देशद्रोह है, देश के साथ गद्दारी है और इसे इसी रूप में देखना चाहिए।

यह समझने की कोशिश करते हैं कि आख़िर मीडिया के इस मनुवादी चरित्र के पीछे मूल कारण क्या हैं? अगस्त 2019 में ऑक्सफेम इंडिया ने भारत की मुख्यधारा के न्यूज़ चैनल्स, अखबार, मैगज़ीन्स और डिजीटल मीडिया के प्रमुख संस्थानों में महत्वपूर्ण पदों (चीफ़ एडिटर, एग्जीक्यूटिव एडिटर, एडिटर, इनपुट एडिटर, फील्ड एडिटर) के जातिगत प्रतिनिधित्व एवं विभिन्न विषयों पर उनके द्वारा आयोजित डिबेट, लेख, रिपोर्ट आदि के प्रकाशन पर एक शोध किया है। इस शोध के परिणाम मीडिया के मनुवादी चरित्र को समझने में काफ़ी सहायक हो सकते हैं।

इसके अनुसार भारत की मुख्यधारा के 121 न्यूज़ संस्थानों (इलेक्ट्रॉनिक, प्रिंट, डिजिटल सभी) में कुल 106 महत्वपूर्ण पदों पर मनुवादी व्यवस्था के द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) समुदाय से हैं। जी हां जो लोग इस देश की आबादी का सिर्फ़ 15% हैं उन्होंने भारतीय इंग्लिश न्यूज़ रूम्स के लगभग 88% स्पेस पर क़ब्ज़ा कर रखा है। बाक़ी देश की आबादी के 85% OBC, SC, ST और अल्पसंख्यक (मनुवादी व्यवस्था के शुद्र और अछूत) के लिए सिर्फ़ 10-12% स्पेस ही बचा है। हिंदी न्यूज़ चैनल्स की हालत तो इससे भी ज़्यादा ख़स्ता है जहां 95% से ज़्यादा महत्वपूर्ण पदों पर इन्हीं तथाकथित उच्च जातियों के लोगों का क़ब्ज़ा है। ज़ाहिर है मीडिया संस्थानों में मौजूद इस असंतुलित सामाजिक प्रतिनिधित्व के रहते आप इन संस्थानों से देश की बहुसंख्यक शोषित, दलित जनता के मुद्दों, उनसे जुड़ी समस्यायों के सम्बंध में ईमानदार रिपोर्टिंग की कल्पना कैसे कर सकते हैं।

मुझे पूरा विश्वास है कि अगर इन मीडिया संस्थानों के मालिकों, शेयर होल्डर्स आदि का ब्यौरा निकाला जाए तो शायद 99% इन्हीं उच्च जातियों के लोग ही निकलेंगे। जनमानस तैयार करने वाले मीडिया के दूसरे संस्थानों टेलिविज़न, सिनेमा, पत्र-पत्रिकाओं इत्यादि की भी हालत इससे अलग नहीं है।

ये एक सर्वविदित तथ्य है कि इन तथाकथित उच्च जातियों के लोगों में जन्म लेना श्रेष्ठता, शासन करने और दूसरों को निम्न और शोषित समझने का मनुवादी भाव होता है। इन्हें भारत के संविधान में वर्णित न्याय, समानता, स्वतन्त्रता, बंधुत्व एवं वैज्ञानिक/तार्किक चिंतन जैसे मूल्यों की बजाए अन्याय, असमानता, ग़ुलामी, पूर्वाग्रह, अन्धविश्वास जैसे मनुवादी मूल्यों से ही ज़्यादा लगाव होता है। भारतीय मीडिया के मुनवादी चरित्र का मूल कारण यही है। जब तक इस देश के मीडिया संस्थानों में देश के सभी वर्गों का उनकी जनसंख्या के अनुपात में समानुपातिक प्रतिनिधित्व नहीं होगा तब तक इस देश में एक लोकतांत्रिक मीडिया की स्थापना सम्भव प्रतीत नहीं होती और न ही ये देश कभी भी सही मायने में एक स्वस्थ लोकतंत्र ही बन सकता है। ■■

शिक्षा विमर्श



शीरीन मारिया
सिवनी, मप्र

तरबियत, तालीम से सर्वोपरि

सर सय्यद अहमद खान का कथन है कि "आदमी, तालीम से इंसान नहीं बनता बल्कि तरबियत से बनता हैं। बोल-चाल में कहा जाता है 'तालीम व तरबियत' मगर मेरी नज़र में तरबियत तालीम से सर्वोपरी है " ! तरबियत यानी ट्रेनिंग मानव जीवन के लिए कितना महत्वपूर्ण है इसका इन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि काम करने के हर छोटे से बड़े तरीक़ो में ट्रेनिंग लाज़मी हिस्सा है. खेल के मैदान से लेकर ऑफिस , स्कूल्स, कारोबार, NGOS, कोई ऐसी जगह नहीं जहां ट्रेनिंग की व्यवस्था ना हो। सीखने की ये प्रक्रिया न सिर्फ नए लोगों के लिए बल्कि हर ऐज ग्रुप के लोगों के लिए कितना ज़रूरी है इसका एक अच्छा उदाहरण टीचर्स ट्रेनिंग सेंटर में देखने मिलता है जहाँ नए टीचर्स के साथ उन उम्र दराज़ टीचर्स को भी ट्रेनिंग दी जाती है जो अपने रिटायर मेन्ट के क़रीब हैं।

चूंकि मेरा संबंध टीचिंग से हैं, मैंने अपने दो साला ट्रेनिंग पीरियड में बच्चो का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, रचनात्मक विकास कैसा हो इन बिंदुओं पर बहुत चर्चाएं सुनीं लेकिन एक बात को बहुत शिद्दत से महसूस किया कि हमारी चर्चा में नैतिकता की बात लगभग नगण्य थी। हमारी शिक्षा पद्धति कुछ इस अंदाज़ में चल रही जहां बच्चों के दिमाग़ ऐसे तैयार किये जा रहे जहां कामयाबी का मापदंड पैसा और ओहदा है। एजुकेशन सेंटर से लेकर घर बाहर नुक्कड़ हर जगह हमारी चर्चा पैसा-पैसा और बस पैसा है। हमारा समाज नैतिकता के अभाव में जीने वाला एक ऐसा खोखला पेड़ बन गया है जो बज़ाहिर तो खड़ा है लेकिन उसकी जड़ें इस क़द्र कमज़ोर हैं की एक मामूली हवा भी उसे उखाड़ दे. समाज में एजुकेशन का स्तर पिछले ज़माने से शायद ज़रूर बढ़ा हो लेकिन नैतिकता का स्तर बहुत घट गया है.

हम अगर अपना पिछला ज़माना देखें हमारे पूर्वजों के पास इतनी डिग्रियां इतने ओहदे नहीं होते थे। लेकिन ज़ुबान के पक्के और दिल के वह सच्चे लोग थे जिनका खमीर नैतिकता से गूंदा गया था, आला तहज़ीब व अख़लाक़ उनकी विशिष्टता थी, उनकी तरबियत भी जिन नानी, दादी और मां के ज़रिये की गई वह भी आला अख़लाक़ व किरदार की मालिक थीं। सब्र, सहनशीलता, बलिदान एवं त्याग, नेकी, परहेज़गारी, मोहब्बत, एहसास ये चीज़ें माल व दौलत पर मुक़्क़दम थीं। अब का दौर और है, पैसा माल व दौलत, बड़ा ओहदा हमारी पहली प्राथमिकता है। बाक़ी चीज़ों का नंबर बहुत बाद में आता है। ज़िन्दगी की दौड़ में दूसरे को गिरा के आगे निकल जाना अक़्लमंदी का प्रतीक है। यह दौर आदमियों की भीड़ में इंसानों की कमी का दौर है। जिगर साहब ने तभी अपना जिगर जला के ये कहा होगा।

"जेहल व ख़िरद ने दिन ये दिखाए
घट गए इंसा बढ़ गए साये !"

आदमी से इंसान बनने के लिए अच्छी तालीम मात्र काफी नहीं, अच्छी तरबियत से जब तक इसकी साज सज्जा ना की जाये तब तक सब अधूरा और खोखला है, बच्चों की अच्छी ग़िज़ा के इंतेज़ाम के साथ उनके उच्च स्तरीय मानसिक भोजन की फ़िक्र ना की जाये तब तक अच्छे समाज की कल्पना एक झूठा ख्वाब है। मां-बाप, टीचर्स, अभिभावकों, के साथ समाज के हर जागरूक व्यक्ति का ये परम कर्त्तव्य है कि तरबियत के पहलुओं पर ग़ौर करें और समाज में फैले अंधकार को मिटाने के लिए अपने व्यक्तित्व को समाज का दीप बनाएं। क्योंकि अंधकार कितना ही गहरा क्यों न हो प्रकाश की छोटी-सी किरण ही अंधकार को मात दे देती है !



मरुस्थल में मरुधाम

इबारत

शम्स बदर
दरभंगा, बिहार

व्योम (space) में अट्टहास करता दूर-दूर तक फैला क्षितिज पर सत्तासीन अंधकार और उसे चुनौती देते, उम्मीद की किरणें बिखेरते कहीं-कहीं दीपक रूपी सितारे! एक नये सवेरा के लिए। तो मरुस्थल पे राज करता मृत्यु; और उसे ललकारता हुआ जीवन को समेटे कहीं- कहीं उपवन रूपी मरुधाम! एक नये जैवीय द्वीप की रचना के लिए। ब्रह्मांड का ये भौगोलिक विस्तार जहां सितारे और मरुधाम गवाही देते हैं, परमेश्वर की सत्ता की। एक नये सवेरा की, मृत्यु को चीर कर निकलने वाले जीवन की।

मरुस्थल में मरुधाम का होना प्रकृति है, एक सत्य है; परमेश्वर की सत्ता का प्रमाण है। जहां जीवन की उत्पत्ति होती है, पालन होता है, फिर विस्तार होता है। समूचे मरुस्थल को जैवीय द्वीप में बदलने के लिए। ब्रह्मांड की विकास यात्रा में एक मात्र जैवीय ग्रह "पृथ्वी" पर जैवीय क्षेत्र से मूल जैविक तत्व का निष्क्रिय होना और क्षेत्र का मरुस्थल में बदलना या फिर मरुस्थल में जैविक तत्व का सक्रिय होना और फिर इसका जैवीय द्वीप में बदलना एक भौगोलिक चक्र है, जो ब्रह्मांड के गति को निरूपित करता है। ये प्रकृति के प्रभाव से भी हो सकता है और मानव जनित भी।

मानव समाज जो अपने उद्भव से ही विकास यात्रा पर है, ब्रह्मांड की तरह, स्वयं को वैज्ञानिक, राजनीतिक, आर्थिक चक्र के समुच्चय में स्थापित करने का प्रयास किया है। जिसके प्रभाव ने अक्सर सामाजिक तत्वों को प्रभावित किया है। इसके प्रभाव ने मानवजाति में सामाजिक तत्व का विकास कर कभी अपने शिखर पर पहुंचा तो कभी विनाश के गर्त में। पृथ्वी पर कभी इसने एक आदर्श समाज की रचना की, तो कभी अराजक समाज की।

मरुस्थल में मरुधाम का होना प्रकृति है, एक सत्य है; परमेश्वर की सत्ता का प्रमाण है। जहां जीवन की उत्पत्ति होती है, पालन होता है, फिर विस्तार होता है।

आज हमारे समाज के राजनीतिक और आर्थिक परिवेश के विकास की संरचना और गत्यात्मकता समाज को विनाश के गर्त की ओर ले जाने वाला है। जैसे, ये समाज को शिक्षित, सम्पन्न, आधुनिक, न्यायपूर्ण व समानता लिए एक अनुशासित आदर्श लोकतांत्रिक सामाजिक ढांचा देने की संस्था न होकर इसे अशिक्षित,पिछड़ा,असमानता,अन्याय के साथ दकियानूसी व कट्टर साम्प्रदायिक ढांचा लिये उपद्रवी अराजक समाज के निर्माण का कोई उद्यम है। समाज को एक शुष्क और नीरस रेगिस्तान में बदलने वाला कोई उद्यम,जो एक जैवीय क्षेत्र को ऐसे रेगिस्तान में बदलने के लिए प्रेरित कर रहा है, जहां केवल रेत हो! सूर्य की सत्ता हो! रेतीला तूफ़ान लाता वायु ऊर्जा का प्रभाव! और जहां मृत्यु क़हक़हे लगा रही हो। ऐसे सामाजिक इकोसिस्टम में पंजाब में किसानों द्वारा शुरू किये गये कृषि क़ानून का विरोध जो अब देश की राजधानी के सीमाओं पर जीवट, अनुशासित और सुसंगठित आंदोलन का आकार ले लिया है, जिसे देखकर लगता है कि ये मरुस्थल

का कोई मरुधाम है जो समूचे मरुस्थल को एक जैवीय द्वीप में बदलने के लिये जीवों को प्रेरित कर रहा है।

हमारा सामाज जिसका इतिहास नैतिक मूल्यों पर आधारित रहा है, जिसने संसार को वसुधैव कुटुम्बकम का अर्थ बताया, जिसने संघर्ष,त्याग और बलिदान के शिखर को छुआ। आज आर्थिक और राजनीतिक चक्र के प्रभाव में आकर अपने नैतिक मूल्यों को खोकर एक रेतीली भूआकृति के रूप में बदल रहा है।

मरुस्थलीय रेत में भी जैविये तत्व होता है, द्रव होता है, जो प्राकृतिक या मानवजनित चक्र के कुप्रभाव से प्रायःमृत (निष्क्रिय) हो जाता है। जिसे फिर से सक्रिय किया जा सकता है। वहीं मरुस्थलीय विज्ञान के अनुसार हर बड़े मरुस्थल में कहीं-कहीं मरुधाम होता है, जहां जीवन होता है और जीवन के लिए आवश्यक कारक की प्रचुरता भी।

विकास की राह में जहां आर्थिक चक्र ने इंसानों का सामाजिक बंधन,जिसका गवाह हमारा उज्जवलित सामाजिक इतिहास है, तोड़कर समाज को व्यक्ति और परिवार के स्तर पर बिखरा दिया, जैसे जैवीय द्वीप की मृदा मरुस्थल के रेत में बिखर जाता है। अर्थात् हमारा समाज चहारदीवारों के अंदर परिवार के आकार का हो गया। इस आर्थिक चक्र ने हमें उपभोक्ता प्रवृत्ति के शिखर पर पहुंचाया, भौतिक वस्तुओं पर पूर्ण रूप से आश्रित कर दिया, हममें मानवीय महत्व (मूल्यों) को कम कर दिया। अर्थात् एक मानव के लिए भौतिक वस्तुएं मानव से ज़्यादा महत्वपूर्ण हो गई। खेल, शिक्षा, सुरक्षा सभी के लिए बाज़ार की वस्तुओं पर आश्रित कर दिया, जिससे मानव अपना संबंध मानव की जगह बाज़ार के वस्तुओं से स्थापित करने लगा।

वहीं हमारे राजनीतिक चक्र ने उस बिखरे हुए सामाजिक तंत्र से राजनीतिक दल को सत्ता लाभ दिलाने के लिए समाज से संवैधानिक प्रस्तावना में मौजूद शब्दावली समाजवाद, धर्म निरपेक्ष को धूमिल करते हुए सम्प्रदायवाद को बढ़ावा दिया। लोगों से सहिष्णुता, धीरज, आदर, प्रेम और विवेक जैसे मानवीय गुणों और सामाजिक तत्वों को धीरे-धीरे ख़त्म कर समाज में असहिष्णुता फैलाया। उनमें एक-दूसरे के लिए नफ़रत और घृणा का भाव भर दिया। एक-दूसरे के लिए अविश्वास पैदा कर दिया। समाज को धर्म, जाति, वर्ग जैसे कई गिरोह में विभाजित कर दिया। हमें गुरुत्वीय प्रभाव के बजाय विद्युत चुम्बकीय प्रभाव की इकाई के रूप में धुर्वीकृत कर दिया। जिसे आज़ाद भारत में हुई साम्प्रदायिक हिंसाएं और उसके बाद धुव्रीकरण को और प्रबल और फैलाव देने के लिए हुई राजनीति के द्वारा बिम्बित किया जा सकता है। राजनीति, देश के लोगों को लोकतंत्र में नागरिक बनने की ओर प्रेरित करने के बजाय इसे बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक में बांट रही है। हमारे मस्तिष्क में सामाजिक विकास के मूल तात्विक फ़ैक्टर जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, इंफ्रास्ट्रक्चर, कम्युनिकेशन की जगह धर्म और आस्था जैसी भावनाओं ने जगह बना ली है।

इस इकोसिस्टम में प्रत्येक मनुष्य केवल एक रेत की तरह होने लगा, जिसे सौर ऊर्जा लगातार तापित कर रहा है और वायु ऊर्जा प्रत्येक कण के लिए दूसरे कण को कुचलने और दबाने के लिए ऊर्जा प्रदान कर रहा है। जहां द्रव (नमी) अल्पतम स्तर पर पहुंच गया, जो रेतकण के तापन को कम कर सके और एक-दूसरे में जोड़ सके। मृदा रसायन के अनुसार मरुस्थलीय रेत में भी जैविये तत्व होता है, द्रव होता है, जो प्राकृतिक या मानवजनित चक्र के कुप्रभाव से प्रायःमृत (निष्क्रिय) हो जाता है। जिसे फिर से सक्रिय किया जा सकता है। वहीं मरुस्थलीय विज्ञान के अनुसार हर बड़े मरुस्थल में कहीं-कहीं मरुधाम होता है, जहां जीवन होता है और जीवन के लिए आवश्यक कारक की प्रचुरता भी। जिसे एक उपभोक्ता बनकर रेत के मरुस्थलीये आकार को और बढ़ाया जा सकता या फिर एक कुशल प्रबंधन, अनुशासित शैली और दृढ़ इक्षाशक्ति से मरुधाम के सहारे समूचे मरुस्थल को एक जैवविविधता वाले जैवीय क्षेत्र में बदला जा सकता है।

किसान आंदोलन जो इन दिनों देश की राजधानी के सीमाओं पर सरकार द्वारा लाए गए तीन कृषि क़ानून के विरोध में चल रहा जिसे भारतीय

जनता पार्टी की सरकार कोरोना पैंडेमिक (जिसमें सरकार अवसर ढूंढने का आह्वान करती है) में किसान संगठनों से विचार-विमर्श किये बग़ैर, उनकी सहमति लिए बग़ैर सितंबर माह में संसद से क़ानून बनाकर भारतीय किसानों पर थोप दिया, जिसमें बहुमत पाकर बनी एक लोकतांत्रिक सरकार ने अपने अपार संख्याबल का भरपूर उपयोग किया। लोकतंत्र की एक कमज़ोरी रही है कि जब कोई राजनीतिक दल अपार बहुमत से सरकार बना लेती है तो वह ख़ुद को बहुत ताक़तवर समझने लगती है और संवैधानिक बॉडी, जैसे सुप्रीम कोर्ट, कमज़ोर और विपक्ष अस्तित्वहीन एक पंगु की तरह हो जाता, जिसके विरोध का सरकार पर कोई असर नहीं पड़ता। सरकार बे-लगाम हो जाती है और धीरे-धीरे तानाशाही सरकार में बदल जाती है, जिसे जनता के सरोकार से कोई मतलब नहीं रह जाता और ऐसी नीतियां बनाने लगती है जो उसे अच्छा लगता है।

उपर्युक्त सामाजिक स्थिति में किसान आंदोलन क्या उसी मरुधाम-सा महत्व रखता है, जो मरुस्थल में कहीं-कहीं होता है? जो समाज से विलुप्त हो रहे सामाजिक वेरिएबल के लिए जीवनदायी हो सकता है। जहां से जीवन का विस्तार हो सकता है, जिससे मरुस्थल में बदल रहे समाज को एक आदर्श समाज की ओर अग्रसित किया जा सकता है। आंदोलन जो एक विरोध से शुरू हुआ और एक लंबे संघर्ष के बाद किसान आंदोलन से होता हुआ एक ऐसे जनआंदोलन-सा विराट रूप ले लिया, जिसने मानव इतिहास में कई परिवर्तन की गाथा लिखी है। ऐसा आंदोलन जिसमें इच्छाशक्ति, जीवटता, जोश, उत्साह, अनुशासन, प्रबंधन का एक उत्कृष्ट संगम है। जिसे बच्चा, जवान, वृद्ध, महिला, पुरुष, मज़दूर, बुद्धजीवी, सिख, हिन्दू, मुस्लिम, इसाई देश के कोने-कोने से आकर उत्सव की तरह मना रहे हैं। जो संघर्ष का एक मशाल बन गया है और आंदोलनकर्ता को घर से मीलों दूर एक लंबी यात्रा, थकान और डर की जगह उत्साह से भर रहा है, आत्मबल का एहसास दिला रहा है, उनमें तेज भर रहा है, एक नये परिवार का अनुभव करा रहा है।

जहां किसी के उग्रता पर सद्भाव और प्रेम की प्रतिक्रिया है। जहां कड़ाके की ठंड और इस ठंड में बारिश आंदोलनकर्ता के इक्षाशक्ति को शक्ति प्रदान कर और प्रबल कर रहा है। जहां अपनों की शहादत दृढ़ संकल्प को अडिग बना रहा है। जहां उन्हें बिखेरने के लिए बनाया गया हर अवरोध एवं बाधाएं उनके दर्मियान पारस्परिक बंधन बना रहा है, उसे मज़बूत कर रहा है। जहां सरकार द्वारा आंदोलन तोड़ने और कमज़ोर करने की नीतियों का परिणाम आंदोलन से जुड़ने आ रहे देश के कोने-कोने से दृढ़ इच्छाशक्ति लिए जनसैलाब है। जहां अहंकार में डूबी निरंकुश और संवेदनहीन सरकार की ताक़त और उसके तंत्र का सामना करने के लिए दिलों में दृढ़ संकल्प है, क़ुर्बानी है! संयम है, विवेक है! एकता है, सहनशीलता है! जोश है, जज़्बा है! जहां सरकार की ध्रुवीकरण की नीतियों को चुनौती देता हुआ एक संविधान है, सामाजिक हार्मोनी लिए एक उपवन है। सहयोग है, सद्भावना है! जहां जनजागृती के लिए ट्रॉली अख़बार है! किताबों का स्टॉल है! पाठक का उमंग है! लोग अपने घर, परिवार, गांव, शहर, राज्य से दूर जैसे एक नए परिवार, एक नए समाज का निर्माण कर रहे हैं। समाज जो, धर्म, संप्रदाय, जाति, वर्ग, लिंग की बेड़ियों से आज़ाद मानवीय मूल्यों के साथ संघर्ष और बलिदान का बिना किसी भेदभाव एक साथ उत्सव मना रहा है। और बना रहा है आकाश पर एक इंद्रधनुष!

किसान आंदोलन क्या उसी मरुधाम-सा महत्व रखता है, जो मरुस्थल में कहीं-कहीं होता है? जो समाज से विलुप्त हो रहे सामाजिक वेरिएबल के लिए जीवनदायी हो सकता है। जहां से जीवन का विस्तार हो सकता है, जिससे मरुस्थल में बदल रहे समाज को एक आदर्श समाज की ओर अग्रसित किया जा सकता है।

बिल्कुल, एक मरुधाम की तरह! जहां छोटा-बड़ा सभी एक साथ मिलकर उत्सव मनाता है; अलग-अलग रंगों के संग, अलग-अलग ध्वनियों के संग और प्रेरित करता है स्वयं को, समूचे मरुस्थल को जैवीय क्षेत्र में बदल देने के लिए। अपने गीतों के गूंज से दूर-दूर तक प्रेरणा की तरंगें उत्पन्न करता है। ■■

आँखन-देखी



मैं भी हाज़िर था वहां

अहमद क़ासिम
जयपुर, राजस्थान

26 जनवरी यानी गणतंत्र दिवस। इस बार यह दिन इस मायने में ऐतिहासिक कहा जाएगा कि देश के किसानों ने, जो पिछले दो महीनों से कृषि क़ानूनों के ख़िलाफ़ राजधानी दिल्ली की सीमाओं पर आंदोलन कर रहे हैं, प्रशासन की अनुमति के बाद आंदोलन स्थल से दिल्ली 'ट्रैक्टर परेड' किया।

दिन भर की गहमा-गहमी और हर दूसरे पल नई ख़बर से रू-ब-रू होते हुए, मैं राजस्थान हरियाणा की सीमा पर मौजूद शाहजहांपुर बॉर्डर से दिल्ली की ओर निकल रही ट्रैक्टर परेड को कवर कर रहा था। इस दौरान पहले ख़बर मिली की ग़ाज़ियाबाद सीमा से निकले किसानों पर आंसू गैस के गोले दाग़े गए हैं, फिर ख़बर आई कि लाठी-चार्ज भी हुआ है। इस दौरान सबसे बड़ी ख़बर यह आ रही थी कि किसानों ने लालक़िले में प्रवेश किया।

मैं इन अपडेट्स की बुनियाद पर लगातार दिल्ली की तरफ़ बढ़ रहे किसानों से प्रतिक्रियाएं ले रहा था। लालक़िले में घुस जाने के सवाल पर एक किसान ने प्रतिक्रिया दी कि "यह वह दिन है जब आज़ादी के बाद लगातार दोहराया गया यह जुमला पूरा हो रहा है जो हर आंदोलन के दौरान कहा जाता था कि संघर्ष ऐसा होगा कि लालक़िले पर चढ़कर एलान करेंगे। उन्होंने कहा कि आज हमारी आंखों ने वो दिन देख ही लिया, ये वाक़ई एक ऐतिहासिक दिन है, जब हम असल मायनों में "गणतंत्र दिवस" मना रहे हैं।

शाहजहांपुर बॉर्डर से निकली यात्रा और मेनस्ट्रीम मीडिया का नरेटिव

दिन भर की ख़बरों का रुख़ बहुत तेज़ी से बदल रहा था। जब यह ख़बर आई कि किसानों ने लालक़िले में प्रवेश कर लिया है तब यहां मौजूद किसानों के चेहरे का रंग एकदम रोशन हो उठा, लेकिन कुछ ही देर में नरेटिव चेंज होने लगा, जहां ट्विटर पर "किसान परेड" ट्रेंड कर रहा था, वहीं अब "ख़ालिस्तानी आतंकवादी" ट्रेंड करने लगा। सोशल मीडिया समेत कई बड़े न्यूज़ चैनल्स पर ख़बर चलने लगी की कुछ लोगों ने लालक़िले पर लगे राष्ट्रीय ध्वज को हटाकर केसरी रंग का कोई झंडा फ़हरा दिया है। हालांकि शाम होते-होते यह एक फ़र्ज़ी ख़बर साबित हुई। झंडा फ़हराया गया था, लेकिन ऐसा करने के लिए राष्ट्रीय ध्वज को नहीं हटाया गया। जब हमने वीडियो में नज़र आ रहे ध्वज के बारे में जानने के लिए हमारे क़रीब मौजूद किसानों से सवाल किया तो उन्होंने बताया की आंदोलन के दौरान कई किसान संगठन अपना झंडा उपयोग में ले रहे हैं, यह उन्हीं में से एक झंडा है।

हज़ारों ट्रैक्टर और अनुशासन की उम्दा मिसाल

शाहजहांपुर बॉर्डर से निकले ट्रैक्टर परेड में ट्रैक्टर की तादाद का अंदाज़ा लगाना हमारे लिए बहुत मुश्किल था, लेकिन एक मोटा अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि लगातार दो घण्टे खड़े रहने के बाद भी ट्रैक्टर आंदोलन स्थल से निकल रहे थे। इस ट्रेक्टर मार्च की सबसे ख़ास बात यह थी कि राजस्थान/हरियाणा के अलावा देश के कई राज्यों (महाराष्ट्र, गुजरात, केरल) के लोग भी मौजूद थे। कई राज्यों की झांकियां भी इस दौरान दिखाई दे रही थीं। इतने बड़े मार्च में अनुशासन देखने लायक़ था, गाड़िया क़तारबद्ध तरीक़े से अपनी स्पीड में दौड़ रही थीं, जिस भी शख़्स से हम बात कर रहे थे वो परेड के दौरान शांति व्यवस्था की बात पर लगातार ज़ोर दे रहा था। जिस वक़्त यह मार्च जारी था ठीक उसी वक़्त दिल्ली के कई इलाक़ों से बड़े हंगामें की ख़बरें आ रही थीं लेकिन शाहजहांपुर से निकले इन हज़ारों किसानों ने तय सीमा तक पहुंचकर वापस अपने ट्रैक्टर आंदोलन स्थल की ओर मोड़ लिए। यहां मौजूद किसान हिंसा के हर सवाल पर यही जवाब दोहरा रहे थे कि दो महीने से ज़्यादा वक़्त से शांति से बैठे हुए किसान हिंसा कर ही नहीं सकते, यह आंदोलन के रुख़ को मोड़ने का एक प्लान है। ■■



ख़ान शाहीन
सीकर, राजस्थान

"ज़िन्दगी के रंग"

जैसे ही हमने हॉस्पिटल में क़दम रखा एकदम सन्नाटा पसरा हुआ था। इस शांति को सुकून बख़्श नहीं कह सकते। ये एक डरावनी शांति थी जिससे सबको डर ही लगता है। हर कोई चाहता है कि खिलखिलाती हुई सी ज़िन्दगी हो। मैं हमेशा ज़िन्दगी के मायने कुछ और समझती थी कि ये ज़िन्दगी रंगीन है या लगता है कि ये एक ख़ुशगवार सहर है,

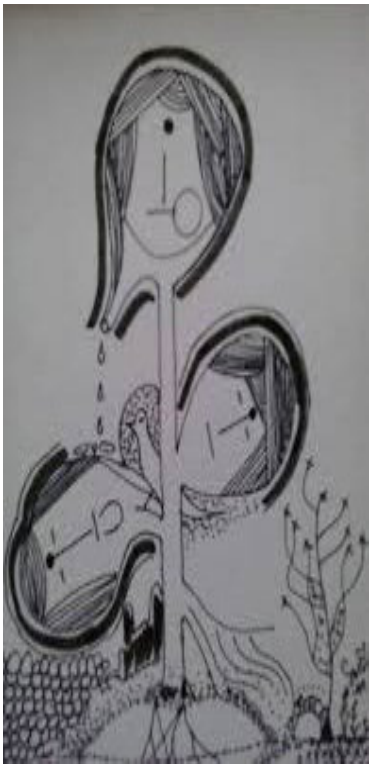

तो कभी लगता है बेपरवाह-सी शाम। या फिर कभी लम्बी रातों की यादों नुमा डायरी। कितना अलग है हर एक कि नज़र में ज़िन्दगी का मतलब। कभी ये झरनों-सी बहती लगती है, तो कभी सावन के सुनसान जमे पहाड़ों-सी। जहां एक ओर ये खिलखिलाती बारिश की रिमझम रिमझम है, तो कहीं सुहानी ठंडी दोपहर की आती हुई किरण।

लेकिन यहां ज़िन्दगी का एक अलग ही रूप था। हम भी जाकर वहां मौन धारण किये हुए लोगों में शामिल हो गए। कुछ देर तक तो सब मेरी नज़रों के सामने एक फ़िल्म की तरह चल रहा था। कोई दवाइया लेने में व्यस्त, तो कोई मरीज़ को सहारा देकर ले जाते हुए या कोई दर्द से कराह रहा था। इन सबको देखकर डर लगने लगा था। मैंने पर्स से बुक निकाली और पढ़ने लगी अब वो फ़िल्म धुंधली होने लगी थी और अक्षर मेरी आंखों के सामने घूमने लगे थे। बार-बार ध्यान उसी ओर खिंचा चला जाता था और मैं फिर उन आकृतियों को देखने लगती।

लगभग आधा घंटा गुज़र गया था, कुछ दोस्त के साथ ICU में किसी से मिलने के लिए हम उठे। थोड़ा दूर था लेकिन वो लगभग 3 मिनट का रास्ता मेरे लिए दुश्वार हो रहा था। रास्ते में बहुत से लोग थे। कुछ मजबूर, कुछ बेसहारा, कुछ मोहताज। मैं कांपने लगी थी इन सब लोगों को देखकर, लेकिन इससे भी भयानक मंज़र ICU के अंदर का था। जैसे ही हम उस औरत से मिलने गए मैं लगभग शायद एक मिनट रुकी थी क्योंकि ऐसा लगा जैसे मैंने ज़िन्दगी में पहली दफ़ा रात को देखा था। जैसे मेरे हाथ-पैर सुन्न हो चुके थे, मेरी रूह कांप उठी थी और आंखों से लगातार पानी की धारा बह रही थी। मैं बार-बार आंसू पोछती और धुंधले होते लोग फिर साफ़ नज़र आने लगते। कुछ ऐसे भी थे जिनकी हालत इतनी ख़राब थी कि मैं नज़रें बचा रही थी। मेरे अंदर जैसे एक और इंसान मुझसे बाते करते हुए कह रहा था कि-"देख ये भी है ज़िन्दगी! एक अंधेरा जहां कुछ नज़र नहीं आता, बस इंसान इस अंधेरे से निकलना चाहता है। ये एक सुनसान-सी वादी है, जहां कोई सुनने वाला नहीं, बस एक भय है जो मंडराता है, उसे वही जानते हैं जो इस चुपचाप-सी फ़िल्म के अदाकारा हैं। वो जो ये सोचते हैं कि ये इम्तिहान कब ख़त्म होगा? दूर कहीं सपनों में किसी शाख़ पर बैठकर वो तकते हैं कि ये उलझन कैसे सुलझे? ■■

कॉम्प्रेटिव रिलिजियन



क़ुरआन, हिन्दू धर्म-ग्रंथ और राजनीतिशास्त्र

अभिजीत कुमार

क़ुरआन की एक आयत में आता है-''हमने इस किताब में कोई चीज़ नहीं छोड़ी है। (क़ुरआन, 6:38) इन्सानी सोच व समझ के दायरे में आने वाली कोई भी चीज़ ऐसी नहीं है जिसका वर्णन क़ुरआन में न हो। क़ुरआन मानव जीवन के विविध पक्षों पर बात करता है- चाहे वह भौतिक हो, सामाजिक हो, आध्यात्मिक हो अथवा राजनीति। क़ुरआन की एक और अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह अल्लाह की तरफ़ से भेजी गई आख़िरी किताब है, अतः यह उन तमाम ग्रंथों की पुष्टि करती है जो इससे पहले भेजे गये थे। स्वयं क़ुरआन में आता है-''और जो किताब हमने तुम्हारी ओर वह्य की है, वही हक़ है, वह उसकी पुष्टि करती है जो उससे पहले अवतीर्ण हुई है। (क़ुरआन, 35:31, 10:37,2,97, 12:111, 3:3, 6:92)

अतः हम देख सकते हैं कि विभिन्न धर्म के धर्म-ग्रंथों की मूल शिक्षाएं भी प्रायः वही है जो क़ुरआन की है। इस क़ुरआन में नाम से केवल 4 आसमानी किताबों का ज़िक्र हुआ है मगर क़ुरआन स्पष्ट कहता है कि हमने हर दौर में किताबें भेजीं।

दूसरे धर्म-ग्रंथों व क़ुरआन की शिक्षाओं में साम्यता विषय पर अगर आलेख लिखे जाएं तो वह काफ़ी बृहत सामग्री होगी, अतः इस आलेख में प्रायः एक ही विषय (राजनीतिशास्त्र) को लिया गया है। इस विषय पर (राजनीतिशास्त्र) क़ुरआन व हिन्दू धर्म-ग्रंथों की शिक्षाओं की समानताएं प्रायः स्तब्धकारी है।

शासक (राजा) कैसा हो

क़ुरआन के अनुसार शासक होना कोई सामान्य बात नहीं है। वह इस धरती पर अल्लाह की तरफ़ से नियुक्त किया गया प्रतिनिधि है। राज्य व समाज का कुशलतापूर्वक संचालन करना, प्रजा व राज्य के हितार्थ काम करना तो उसकी महती ज़िम्मेदारी है ही साथ ही उसका यह भी कर्तव्य है कि वह एक ऐसी व्यवस्था क़ायम करे कि समाज और उसकी प्रजा उस सर्वोच्च सत्ता की तरफ़ से विरत न हो, वह स्वयं भी राज्य का संचालन ईश्वर के द्वारा प्रदत्त विधानों के आधार पर करे। एक महान विचारक के शब्दों में सर्वोत्तम शासक वह है जो ईश्वरीय धर्म-विधान के आधार पर शासन चलाता है। क़ुरआन की आयत है-''निस्संदेह हमने तौरात उतारी जिसमें मार्गदर्शन और प्रकाश था, नबी जो आज्ञाकारी थे, उसको यहूदियों के लिए अनिवार्य ठहराते थे कि वे उसका पालन करें।'' (क़ुरआन, 5:44)

शासक से ठीक यही अपेक्षा (कि वह ईश्वरीय विधानों पर चले व प्रजा को भी उस पर चलाए) महाभारत में भी की गई है जहां कहा गया है-''धर्मशीला-प्रजा-सर्वाः स्वधर्मनिरते नृपे।'' (महा॰ अनुशासनपर्व, अ॰-145) अर्थात् राजा को सदा धर्म के साथ प्रजा का पालन करना चाहि। राजा के स्वधर्मपरायण होने से वहां की सारी प्रजा धर्मशील रहती है।

क़ुरआन की उक्त आयत में यह बात उस राजा के लिए आई है, जो नास्तिक है, ईश्वरीय विधानों पर नहीं चलता। क़ुरआन की आयत है-''जो कोई उसके अनुसार फ़ैसला न करे जो अल्लाह ने उतारा है तो वही विधर्मी हैं।'' (क़ुरआन, 5:44)

महाभारत में कहा गया है-

अथ येषामधर्मज्ञो राजा भवति नास्तिकः । न ते सुखं प्रबुध्यन्ति न सुखम् प्रस्वपन्ति च ।

सदा भवन्ति चोद्विग्नास्तस्य दुश्चरितैर्नराः । योगक्षेमा हि बहबो राष्ट्रं नास्या विशन्ति तत् ॥

अर्थात् जिसका राजा धर्म को न जानने वाला तथा

नास्तिक होता है, वे लोग न तो सुख से सोते हैं, और न सुख से जागते हैं, अपितु राजा के दुराचार से सदैव उद्विग्न रहते हैं। ऐसे राज्य में बहुधा योगक्षेम नहीं प्राप्त होते। (महा०, अनु० पर्व, 62141-42)

विदेश नीति

राज्य की विदेश नीति कैसी होनी चाहिए इस बारे में भी क़ुरआन शरीफ़ काफ़ी कुछ कहता है। किसी भी राज्य को अपने पड़ोसी राज्य के साथ किस तरह का व्यवहार करना चाहिए? क़ुरआन की आयत है-''तो जो तुम पर ज़्यादती करे तुम भी उसकी ज़्यादती के बराबर उसके विरुद्ध पेशक़दमी करो।''

(क़ुरआन, 2:194)

आगे आता है-''और यदि वह संधि और सलामती की ओर झुके तो तुम भी इनके लिए झुक जाओ।''

(क़ुरआन, 8:61)

महाभारत में जब गंगापुत्र भीष्म शरशय्या पर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे होते हैं तो श्री कृष्ण जी, युधिष्ठिर व अर्जुन को लेकर उनके पास आते हैं तथा भीष्म से कहते हैं कि वह अर्जुन व युधिष्ठिर को राजनीति संबंधी कुछ उपदेश दे। इस पर उपदेश देते हुए गंगापुत्र भीष्म भी राज्य की विदेश नीति के बारे में वही बात कहते हैं जो क़ुरआन की इस आयत में है। भीष्म कहते हैं-''राजा को सदा ही उद्योगशील रहना चाहिए, युधिष्ठिर इस बात को तुम हृदयस्थ कर लो। जो संधि लायक़ हो उससे संधि करो जो विरोधी हो उसका डटकर विरोध करो।''

न्यायी हो

क़ुरआन के अनुसार शासक ईश्वरीय विधान के तहत नियुक्त प्रतिहारी है, अतः क़ुरआन शासकों के लिए भी कुछ मानक, कुछ कसौटियां तय करता है। उदा०-(हमने कहा) हे दाऊद! हमने तुम्हें धरती पर ख़लीफ़ा बनाया है अतः तू लोगों के बीच हक़ के साथ हुकूमत कर।'' (क़ुरआन, 38:26) अर्थात् क़ुरआन कहता है कि राजा को सदा न्याय के साथ हुकूमत करना चाहिए, कभी भी पूर्वाग्रह ग्रस्त होकर फ़ैसला नहीं करना चाहिए। न्याय करते समय अपने-पराये का भेद आड़े नहीं आए, इसका ध्यान रखना चाहिए। महाभारत में भी राजा से भी इसी तरह की अपेक्षा की गई है। कहा गया है-''अशिष्टशासनं धर्मः शिष्टानां परिपालनम्।'' (महा०, अनु० पर्व, अध्याय-145) अर्थात् ''अशिष्ट पुरुषों को दंड देना व शिष्ट पुरुषों का पालन करना राजा का धर्म है।''

शासन-व्यवस्था

विकेन्द्रित शासन-व्यवस्था का निर्देश भी क़ुरआन में है। राज्य उत्तम तरीक़े से संचालित होता रहे इसके लिए शासन के प्रत्येक अंग के बीच परस्पर समन्वय व तालमेल का होना अत्यंत आवश्यक है। शासन तभी सुचारू ढंग से चलता है जब शासन व्यवस्था का प्रत्येक अंग अपने से ऊपर वाले का आज्ञापालक हो। इस प्रकार की व्यवस्था जहां भी होती है शासन सुचारू ढंग से चलता है। क़ुरआन की आयत है-''अल्लाह का आदेश मानो और रसूल का आदेश मानो और उनका जो तुम्हारे अधिकारी लोग हैं।'' (क़ुरआन, 4:59)

भारतीय परंपरा में हितोपदेश ग्रंथ में तथा महाभारत में व आनंद रामायण में आता है-''मंत्रियों का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वह अपने राजा का आज्ञापालक हो उसके प्रति निष्ठावान व उसका भला चाहने वाला हो तथा उसकी सलाह राज्य के कार्यों के अनुसार हो अन्यथा वे लाह की पुतली की तरह निष्क्रिय होते हैं। राजा भोज ने भी सुचारू व्यवस्था की अनिवार्य शर्त यह ठहराई थी कि मंत्रीगण राजा का आज्ञापालक हो।

शासक होने की योग्यता

राजा शासकीय व्यवस्था का आधार है। अतः राजा होने के लिए योग्य होना अत्यंत आवश्यक है। एक अच्छे शासक के जो भी गुण होते हैं, राजा बनने के लिए उस व्यक्ति विशेष में उन गुणों का होना परमावश्यक है। क़ुरआन की आयत है-''और याद करो जब इबराहीम की उसके रब ने कुछ बातों में परीक्षा ली तो उसने उसे पूरा कर दिखाया, उसने कहा, ''मैं तुझे सब लोगों का नायक बनाने वाला हूं। (क़ुरआन, 2:124) क़ुरआन के अनुसार शासक की नियुक्ति पूरी तरह जांच-परख के होनी चाहिए। अयोग्य व्यक्ति को कभी भी शासक नियुक्त नहीं करना चाहिए। हिन्दू ग्रंथ में भी स्पष्ट कहा गया है कि शासक का योग्य होना अनिवार्य है। धर्मराज युधिष्ठिर को राजनीति संबंधी उपदेश देते हुए भीष्म कहते हैं-हे पुत्र, जिस प्रकार समुद्र में टूटी नौका त्याग दी जाती है उसी प्रकार जनता को चाहिए कि वह अहितकर उपदेश देने वाले आचार्य व रक्षा न कर सकने वाले राजा को त्याग दे। (महा०, शांतिपर्व) भीष्म आगे कहते हैं-''राजा आवश्यकतानुसार कठोरता व कोमलता दोनों का अवलंबन करे। जैसे वसंत ऋतु का तेजस्वी सूर्य न ज़्यादा ठंड देता है न ज़्यादा गर्मी। सभी व्यसनों व आसक्तियों को उसे त्याग देना चाहिए।

आनंद रामायण में वर्णित है श्रीराम चन्द्रजी अपने अनुजों को राजनीति का उपदेश देते हुए कहते हैं-हे अनुज! ये सात दोष हैं जो अगर किसी में हो तो वह शासक बनने योग्य नहीं-अधिकनिडा, मद्यपान, धूत, वेश्यागमन, आलस्य, ज़्यादा खेलकूद व ज़्यादा शिकार करना। (आ०रा०) ■■

अध्ययन चर्चा

तल्हा मन्नान
एएमयू, अलीगढ़

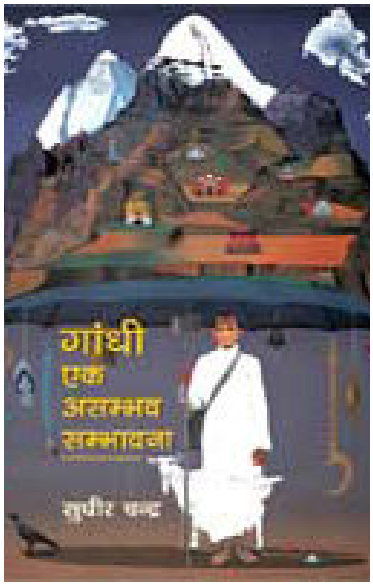

एक असम्भव सम्भावना

पुस्तक का नाम – गांधी : एक असम्भव सम्भावना
लेखक – सुधीर चंद्र
प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन
प्रकाशन वर्ष – 2016
भाषा – हिन्दी
पृष्ठ – 184
मूल्य – 180/-

अगर यह कहा जाए कि हिन्दुस्तान में महात्मा गांधी को कम समझा गया है तो यह बात उचित नहीं होगी। गांधी के भारत में गांधी पर ख़ूब अध्ययन हुए हैं। सैकड़ों संस्थाएं हैं जो गांधी के नाम पर काम कर रही हैं। अनेक लाइब्रेरियों में गांधी महफ़ूज़ हैं। विश्वविद्यालयों में गांधी मिल जाएंगे, स्कूलों के पाठ्यक्रम में गांधी मिल जाएंगे, लेकिन इसके बावजूद कितनी बड़ी विडम्बना है कि उसी भारत में गांधी को बदनाम करने के ख़ूब षड्यंत्र भी रचे जाते रहे हैं। उनके ख़िलाफ़ ख़ूब प्रोपगंडे होते रहे हैं। सुनियोजित तरीक़े से उनके क़ातिल का महिमामंडन किया जाता रहा है। कितनी बड़ी विडम्बना है कि आज के 'नये भारत' में 30 जनवरी के दिन हर साल गोडसे को ट्विटर पर ट्रेंड कराया जाता है और यह सामान्य हो चला है।

शायद इसीलिए लगता है कि हिन्दुस्तान गांधी को नहीं समझ सका है। कम से कम गांधी के दुःख को तो नहीं ही समझ सका है। वे दुःख जो गांधी को उनके अंतिम समय का हिन्दुस्तान देखकर पहुंचे।

गांधी दुनिया के ऐसे नायकों में से हैं जिनमें विकल्प दे पाने की संभावना है। विकल्प कई चीज़ों का – रोज़ की मारकाट से लेकर सभ्यता और विकास की अवधारणा तक का, अन्याय के प्रतिरोध के तरीक़े से लेकर एक आधुनिक सामाजिक ढांचा खड़ा करने तक का और यही कारण है कि वे इतिहास की चीज़ नहीं बने हैं। उन्हें लेकर आए दिन नए अध्ययन हो रहे हैं, जो उनके जीवन, संघर्षों और विचारों के नए-नए पहलुओं पर रोशनी डालते हैं। राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित वरिष्ठ पत्रकार सुधीर चन्द्र द्वारा मूल रूप से हिन्दी में लिखी गई पुस्तक 'गांधी : एक असम्भव सम्भावना', महात्मा गांधी के अन्तिम कुछ वर्षों के जीवन का बारीकी से किया गया अध्ययन है। यह अध्ययन है गांधी जी की उन दिनों की मानसिकता का जब वे मृत्यु की कामना करने लगे थे। यह अध्ययन है उस दौरान गांधी जी को महसूस होने वाली असहायता का जब उन्हें अहिंसा का विचार ध्वस्त होता दिखाई दे रहा था, लेकिन लेखक सुधीर चन्द्र का मानना है कि विचार कभी ध्वस्त नहीं होते। वे कहते हैं कि दरअसल गांधी के अहिंसा पथ पर भारत कभी चला ही नहीं! गांधी निष्क्रिय प्रतिरोध या कमज़ोरों की अहिंसा के नहीं बल्कि बलवानों की अहिंसा के क़ायल थे।

अमूमन भूमिकाओं में जो लिखा जाता है, वह इस पुस्तक के पहले अध्याय में कहा गया है। लेखक इस पुस्तक में गांधी के साथ-साथ स्वयं को भी देखना चाहता है। उनका कहना है कि इस पुस्तक के बहाने सभी को स्वयं के भीतर झांकने का प्रयास करना चाहिए कि आज के भारत में वे गांधी को कहां देखते हैं। यह किताब गांधी के 'अन्त' को समझने की कोशिश करती है – पार्थिव अन्त नहीं बल्कि वो अन्त जब उन्हें अपने तीस वर्षों के किए-कराए

पर पानी फिरता नज़र आने लगा। एक ऐसा त्रासद अन्त जब 125 साल तक जीने की इच्छा रखने वाले गांधी अपनी मृत्यु की कामना करने लगे और सरेआम प्रार्थना सभाओं में अपनी पीड़ा व दुख की गाथा सुनाने लगे। गांधी जब चौंसठ वर्ष के थे तब उन्होंने 'हरिजन' में लिखा था, "उम्र से बूढ़ा होने पर भी मुझे नहीं लगता कि मेरा आन्तरिक विकास रुक गया है या काया के विसर्जन के बाद रुक जाएगा।" लेकिन 27 नवंबर 1947 के प्रार्थना सभा के अन्त में उन्होंने अपनी गहराती व्यथा को निचोड़ते हुए कहा, "जो इन्सान समझदार है, वह इस तरह के वातावरण में साबुत नहीं रह सकता। यह मेरे दुख की कथा है या यूं कहें कि सारे हिन्दुस्तान के दुख की कथा है, जो मैंने आपके सामने रखी है।"

पुस्तक का दूसरा अध्याय गांधी के स्वराज पर आधारित है जिसकी भूमिका उन्होंने 'हिन्द स्वराज' व अपने अन्य लेखों व भाषणों में प्रस्तुत की थी। वे भारत को एक आदर्श मुल्क के रूप में विश्व के सामने प्रस्तुत करना चाहते थे। भारत की रचना का स्वरूप व उसके बुनियादी सिद्धांतों के विषय में उनके विचार स्पष्ट थे। वर्षों से वे इस विषय पर सोचते रहे थे। स्वराज की उनकी एक विशिष्ट परिकल्पना थी। उनके अनुसार विदेशी शासन से स्वतंत्रता मात्र ही स्वराज नहीं था। जब उन्हें लगने लगा कि भारत स्वतंत्र हो जाएगा तो वे स्वराज सम्बन्धी सुझाव कांग्रेस और नेहरू के सामने रखने लगे परन्तु हर ओर से उन्हें नज़रअंदाज़ किया गया, उन्हें निराशा ही हाथ लगी। यह किताब गांधी की उस असहाय परिस्थिति को, उस रूदन को और उस कष्ट को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करती है जो उन्हें दरकिनार करके पूरे देश द्वारा दिया जा रहा था। यह पहली बार नहीं था जब कांग्रेस उनकी नहीं सुन रही थी। कांग्रेस के साथ उनका रिश्ता आवाजाही का ही था। वह जितना कांग्रेस के भीतर रहे थे, उतने ही बाहर भी रहे थे, लेकिन अंतिम दिनों में जब पूरे स्वतंत्रता संग्राम के परिणामस्वरूप भारत का एक राजनीतिक, सामाजिक व संवैधानिक ढांचा तैयार करने की बात आई तो कांग्रेस के साथ-साथ अन्य लोगों ने भी गांधी को नकार दिया। यह पुस्तक गांधी के उस नकारे जाने का गहराई से अध्ययन करती है और पाठकों के सामने उनकी व्यथाएं ज्यों की त्यों प्रस्तुत करती है ताकि सभी पाठक उनकी, उस दौर की, मानसिक स्थिति का अध्ययन करें जब वे असहाय महसूस करने लगे थे।

लेखक ने पुस्तक के तीसरे अध्याय को 'गांधी के दुख' नामक शीर्षक दिया है। गांधी गहरे आशावादी व्यक्ति थे। बड़े-से-बड़े संकट में भी आशा की कोई किरण ढूंढ लेते थे। कुछ न दिखे तो ईश्वर का सहारा ले लेते थे लेकिन अपने अंतिम दिनों में वे मृत्यु की कामना करने लगे। आख़िर ऐसे क्या कारण थे कि 125 साल तक जीने की इच्छा रखने वाले गांधी देश के बंटवारे के समय मरने की कामना करने लगे? क्या सिर्फ़ एक झटके ने ऐसी मनःस्थिति पैदा कर दी थी? कम से कम 13 जून 1947 तक गांधी जीने की बात कर रहे थे और यह देश के बंटवारे को मुकम्मल तौर पर मान लिए जाने से दस दिन बाद की बात है। उस शाम प्रार्थना प्रवचन में उन्होंने कहा था, "अगर मैं स्थितिप्रज्ञ रह सका तो एक सौ पच्चीस वर्ष की उम्र में से एक भी वर्ष कम ज़िन्दा नहीं रहूंगा। अगर हम सभी स्थितिप्रज्ञ बनें तो हम में से एक भी व्यक्ति को 125 वर्ष से ज़रा भी कम जीने का कोई कारण नहीं है। वैसे ईश्वर चाहे तो मुझे आज ही उठा ले, पर मैं अभी तुरंत चलने वाला नहीं हूं। मुझे अभी रहना है और काम करना है।" क्या थे गांधी के दुख? इसका जवाब है गांधी के इस व्यथित सवाल में – "आज के हिन्दुस्तान में कौन-सी ऐसी चीज़ हो रही है जो मुझे ख़ुशी दे सके?" लेखक ने लगभग 50 पृष्ठ इस अध्याय को दिए हैं जिससे अंदाज़ा होता है कि गांधी के दुख कितने हैं? उनके दुखों में कितनी खीझ है, कितना असहाय होने का बोध है और सपनों के भारत को टूटते देखने की व्यथा है।

लेखक की भाषा और खोजी दृष्टि कमाल की है और उनका नजरिया भी ज़बरदस्त है। गांधी पर लिखते हुए उनका मानसिक और नैतिक संतुलन भी बरक़रार है। तभी उनके लेखन में पटेल, जिन्ना, नेहरू, खलनायक नहीं लगते जो विभाजन पर और गांधी समर्थक लेखकों के लेखन में हो ही जाता है। दूसरी ओर गांधी हैं जो सत्ता से दूर हैं लेकिन आम लोगों से लेकर घोर सांप्रदायिक नेताओं तक के दिल में भरोसा जगाते हैं। ऐसी अद्भुत किताब और वह भी हिंदी में लिखने के कारण सुधीर चंद्र साधुवाद के पात्र हैं।

यह किताब किसे पढ़नी चाहिए? उन सभी को जो अहिंसा के सिद्धांत को आंखें बंद करके नकार चुके हैं, उनको भी जो अभी भी गांधी के सिद्धांतों में विश्वास बनाए हुए हैं और किसी वैकल्पिक राजनीति और व्यवस्था की उम्मीद में हैं। अंत में गांधी की दूरदर्शिता को स्पष्ट रूप से दिखाता उनका कथन प्रस्तुत है जो उन्होंने 5 नवम्बर 1947 के 'यंग इंडिया' में लिखा था, "मैंने एक ऐसा रास्ता दिखाने की कोशिश की है जो शान्तिपूर्ण, मानवीय और उदार है। इसे ठुकराया जा सकता है। अगर ऐसा होता है तो विकल्प होगा एक रस्साकशी, जिसमें हर कोई दूसरे को गिराने की कोशिश करेगा।" ■■

मुत्तलिब मिर्ज़ा
कोटा, राजस्थान

विचारों में ज़िन्दा हैं गांधी



भारत के महान शिक्षाविद, साहित्यकार और स्वतंत्रता सेनानी मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने "गांधी जी की यादगार किस शक्ल में क़ायम की जाए" विषय पर अपने अध्यक्षीय भाषण में गांधी जी के बारे में कहा था "उन जैसी शख़्सियतें दुनिया में कभी कभी उभरती हैं जो दुनिया की समस्त स्वयं निर्मित हदबंदियों से ऊपर होती है, गांधी जी क़ौमी, भाषाई, भौगोलिक और धार्मिक हदबंदियों से आज़ाद थे।"

भारत को समझने और जानने के लिए गांधी को जानना और समझना ज़रूरी है, ठीक इसी प्रकार भारत को बचाने के लिए गांधी के विचारों की सुरक्षा और जनमानस तक उनको पहुंचाना आवश्यक है। गांधी जी ने जिस स्वतन्त्र भारत का सपना देखा था वो हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे पर आधारित था। हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए गांधी जी ने यह राह बताई थी, 'हम एक-दूसरे के ग़मों में साझी होकर और परस्पर सहिष्णुता की भावना रखकर एक दूसरे के साथ सहयोग करते हुए अपने सामान्य लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे तो यह हिंदू-मुस्लिम एकता की दिशा में सबसे मज़बूत क़दम होगा।' (यंग इंडिया 11-5-1921)

गांधी जी के इन्हीं विचारों के कारण वो कभी अतिवादी और फ़ासीवादी समूहों को पसंद नहीं आए, तक यहां कि गांधी जी ने अपने विचारों पर चलते हुए अपनी जान दे दी। 30 जनवरी 1948 को जब गांधी जी की हत्या की गई तो वह किसी व्यक्ति की हत्या नहीं अपितु हिन्दुओं और मुसलमानों को जोड़ने वाले सेतु को तोड़ने का प्रयास किया गया।

गांधी एक विचारधारा बन गए थे और उन संगठनों व विचारधारों की राह में बड़ी रुकावट थे जो नफ़रत, हिंसा और अराजकता के ज़रिए भारत के नागरिकों को ऊंच-नीच, सवर्ण-दलित, हिन्दू-मुस्लिम और स्वदेशी-विदेशी जैसे गिरोहों में विभाजित करना चाहते थे। अंततः गांधी जी की हत्या की योजना बनाई गई और उसे अमलीजामा पहनाया गया, लेकिन गांधी जी के विचार और उनके व्यक्तित्व का प्रभाव देश में इतना गहरा था कि फ़ासीवादी टोला गांधी जी

भारत को समझने और जानने के लिए गांधी को जानना और समझना ज़रूरी है ठीक इसी प्रकार भारत को बचाने के लिए गांधी के विचारों की सुरक्षा और जनमानर तक उनको पहुंचाना आवश्यक है। गांधी जी ने जिस स्वतन्त्र भारत का सपना देखा था वो हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे पर आधारित था।

की हत्या में चाहे सफल हो गया लेकिन वैचारिक तौर पर गांधी जी के प्रभाव को कम करने में नाकाम रहा। यहां तक कि उन संगठनों व पार्टियों को भी भारत में अपने वजूद को बाक़ी रखने के लिए गांधी जी के नाम का सहारा लेना पड़ा, जो गांधी जी के वजूद को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं। गांधी जी के प्रभाव को कम करने के लिए कई बार उनके चरित्र को दूषित करने की कोशिशें की गई। भारत की फ़ासीवादी ताक़तें अपने मुख्य मंचों पर तो गांधी का नाम जपते हैं और उन्हें अपने साथ जोड़ने की कोशिशें करते हैं। इसका उदाहरण आरएसएस प्रमुख मोहन भागवत जी का वो बयान है जो संघ की वेबसाइट पर मौजूद है–

"विभाजन के तुरंत बाद के त्रासद दिनों में महात्मा गांधी, दिल्ली में उनके निवास स्थान के नज़दीक संघ की शाखा में पहुंचे. उन्होंने स्वयंसेवकों से बात की। उनकी इस यात्रा की रपट हरिजन के 27 सितम्बर 1947 के अंक में छपी। गांधी जी ने संघ के स्वयंसेवकों के अनुशासन पर ख़ुशी ज़ाहिर की और कहा कि उन्हें यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई कि स्वयंसेवकों के बीच जाति आदि की दीवारें नहीं हैं।" लेकिन भागवत जी ये नहीं बताते की गांधी जी ने इसके साथ ये भी कहा था, "परन्तु (किसी भी संगठन के) वास्तविक रूप से उपयोगी होने के लिए, बलिदान की भावना के साथ-साथ, पवित्र उद्देश्य और सच्चा ज्ञान भी ज़रूरी है। यह साबित हो चुका है कि इन दोनों के बिना, केवल बलिदान समाज को नष्ट कर देता है।"

इसी तरह गांधी जी की 150वी जयंती पर बीजेपी ने एक "संकल्प यात्रा" निकाली और उस मौक़े पर नारा दिया–"मन में बापू"

गांधी जी के प्रति RSS और बीजेपी का "लगाव" किसी से छुपा नहीं है, न ये छुपा है की गांधी जी की हत्या करने वाले "गॉडसे" का प्रशिक्षण किस विचारधारा की छत्र-छाया में हुआ था और आज भी किन लोगों के "मन में गोडसे" बसता है...।

पिछले कुछ सालों में वो लोग जो गांधी जी के विचारों से नफ़रत और गोडसे से प्रेम रखते हैं उनकी शक्ति न सिर्फ़ बढ़ी है बल्कि वो खुलकर "शक्ति प्रदर्शन" भी करने लगे हैं। कहीं गोडसे का मंदिर बनाया जाता है, कोई गोडसे को देश-भक्त और वीर कहता है, कोई कहता है कि गोडसे ने देशहित में गांधी का वध किया....इस तरह की बातें करने वाले लोग कौन हैं और वो कहां से ऊर्जा पाते हैं ये भी किसी से छुपा हुआ नहीं है...।

गांधी जी की हत्या "गोडसे" ने की जिसे फांसी दे दी गई लेकिन वो विषैला वृक्ष जिसका फल खाकर "गोडसे" विषाक्त हुआ था वो तो भारत में ख़ूब फला-फूला, अब तो उस वृक्ष की टहनियां सत्ता के गलियारों तक पहुंच चुकी है...।

गांधी जी की हत्या के षड्यंत्र में कौन लोग और कौन से संगठन शामिल थे इस पर उस वक़्त के गृहमंत्री सरदार पटेल के विचार और उनके लिखे हुए ख़त आज भी पढ़े जा सकते हैं। ...वो गांधी जी की हत्या के षड्यंत्र में आरएसएस और हिन्दू महासभा को सीधे तौर पर शामिल मानते थे और इसका इज़हार उन्होंने हिन्दू महासभा के वरिष्ठ नेता श्यामा प्रसाद मुखर्जी को एक ख़त लिखकर किया था।

सरदार पटेल ने गांधी की हत्या के 8 महीने बाद 19 सितंबर 1948 को आरएसएस के मुखिया एमएस गोलवलकर को सख़्त शब्दों में लिखा:

"हिंदुओं में जोश पैदा करना व उनकी रक्षा के प्रबन्ध करने के लिए यह आवश्यक न था कि वह ज़हर फैले। उस ज़हर का फल अन्त में यही हुआ कि गांधी जी की अमूल्य जान की क़ुर्बानी देश को सहनी पड़ी और सरकार व जनता की सहानुभूति ज़रा भी आरएसएस के साथ न रही, बल्कि उनके ख़िलाफ़ हो गई। उनकी मृत्यु पर आरएसएस वालों ने जो ख़ुशी जताई और मिठाई बांटी उससे यह विरोध और भी बढ़ गया और सरकार का इस हालत में आरएसएस के ख़िलाफ़ कार्रवाई करना ज़रूरी ही था।" (बीबीसी हिंदी 30 जनवरी 2018)

ये कैसी विडंबना है कि आज गांधी के सपनों के भारत को सावरकर के सपनों के भारत में बदला जा रहा है। रंग-बिरंगे ख़ुशबूदार फूलों की जगह बदबूदार कटीले पौधे लगाने की साज़िशें रची जा रही हैं। सवाल ये है कि हम कैसा भारत चाहते हैं, हमारी नई युवा पीढ़ी की उठान गांधी जी के विचारों पर हो या हम उन्हें "गोडसे" बनाकर उनके हाथों में बंदूक़ थमा दें?

■■

इतिहास बोध बनाम इतिहास का महिमामंडन

इतिहास के झरोखे से



अशफ़ाक़ ख़ान
सवाई माधोपुर, राजस्थान

मानव और इतिहास, एक-दूसरे से तथ्यों और घटनाओं की कोरी डोर से नहीं जुड़े हैं, जिसके दोनों सिरों को समय ने बांध दिया हो, बल्कि ये कई अनसुलझे रहस्यों की गुथी हुई रस्सियां है, जिसे समझने की प्रक्रिया को ही इतिहास बोध कहा जाता है। जिस तरह इंसान इतिहास को स्वंय के अस्तित्व के लिए ज़रूरी समझता है, उसी प्रकार इतिहास भी वर्तमान से या उसके समझने वालों से कुछ अपेक्षाएं रखता है। ये अपेक्षाएं, किसी समाज को उसका अतीत ही स्मरण नहीं करवाती बल्कि उसके कर्तव्य भी याद दिलाती है। यही इतिहास का एक विषय के तौर पर परिचय है।

इतिहास के अध्ययन के दौरान कई बार ये प्रश्न ज़हन में आता है कि क्या इतिहास वही है जो हमारे सामने लिखित है? या जिसे किसी इतिहासकार ने अपनी नैतिक दुविधा और वैचारिक प्रभाव में आकर हमें एक पाठक के रूप में परोस दिया है? वास्तव में इतिहास इन सबसे इतर उन सामूहिक घटनाओं का दृष्टिकोण हैं जो हमारी विवेकशीलता को प्रभावित करता है, जो हमारी निर्धारित मान्यताओं पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाता है और उस सारे दृश्य का चित्रण करता है, जिनसे वास्तविक परिस्थितियों का जन्म हुआ। इन वास्तविक परिस्थितियों को जाने बिना या समग्रता से विश्लेषण किये बिना इतिहास के साथ न्याय भी नहीं होता, न ही सही अर्थ में उसकी प्रासंगिकता का दोहन कर सकते हैं।

वर्तमान काल में इतिहास को लेकर अपरिपक्व और अधजल सोच हर दिशा में हावी है। कहीं यह सोच स्थापित मान्यता से आगे बढ़कर एक श्रद्धा और भक्ति में सिमट गई है, तो कहीं इसने आगामी संभावित तर्कों व पक्षों के लिए पूरी तरह दिमाग़ का दरवाज़ा बंद कर लिया है। दुर्भाग्य से हमारे देश में भी इसी सोच का वर्चस्व है। इतिहास को सफ़ेद और स्याह रूप में देखने के रिवाज ने अकादमिक स्तर पर नई पीढ़ी को विशेष रूप से और समाज के हर वर्ग को सामान्य रूप से इतिहास के मूल स्व रूप से भी अनायास ही दूर किया है। ऐसे में इतिहास से पैदा होने वाली मौलिक चेतना व संवेदना भी द्वंद के भंवर में विलुप्त हो चुकी है।

वर्तमान में इतिहास के इस दुर्लभ दृष्टिकोण के भेंट कई मुद्दे चढ़े हैं। इनमें मुग़लों के भारत आगमन और इससे भी पूर्व लोधी व खिलजी वंश का शासन प्रमुख है। भारत के इतिहास के इस मध्यकाल के बारे में विभिन्न मत हैं बल्कि मतों से ज़्यादा एक वैचारिक गूढ़ता का प्रवाह है, जहां एक ओर लगता है कि इस क्षेत्र ने इतना सियासी अंधकार कभी देखा ही नहीं, तो दूसरी ओर इसे मानवीय इतिहास के सबसे स्वर्णिम काल के रूप में सुशोभित किया जाता है। वास्तव में इन दोनों भावनाओं के बीच में अक्सर रटे रटाये तथ्य ही पिसते रहते हैं, जबकि स्वाभाविक है कि इतिहास के इस लंबे समय चक्र में बहुत सारी विविधताएं, उतार-चढ़ाव रहे होंगे।

उदाहरण के तौर पर मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब की ज़िन्दगी, उस पर मढ़े गये या लगाए गए क़ातिल और मसीहा के तमग़ों से इर्द-गिर्द कई अन्य रूपों में भी विद्यमान थी। एक शासक के तौर पर पांच दशक की हुकूमत ने कई रंग देखें होंगे। वो ना एक विशुद्ध धार्मिक बाबा था ना ही एक सियासतदां। उसके जीवन में भी उतनी ही चुनौतियां थीं जितनी अन्य किसी बादशाह की ज़िन्दगी में होती थी और फिर उन चुनौतियां से लड़कर महान बनने की इच्छा भी।

इन सबके बीच ये सवाल कि इतिहास की हमसे क्या मांग है? इतिहास के अध्ययन का मूल उद्देश्य तो यही है कि हम अतीत में हुई घटनाओं की पृष्ठभूमि को समझें, उनसे जुड़े हर पहलू को समांतर क्रम में समझने का प्रयास करें। इतिहास की हर स्थिति को आदर्श या व खलनायक के मापदंड से अलग इसे समय के साथ बदलती इंसानी सभ्यता की धारा के तौर पर देखें। इतिहास पर ये भार नहीं कि वो भविष्य के लिए कोई नायक तैयार करे। बल्कि वो भविष्य में आने वाले ख़तरों के लिए इंसान को तैयार करता है। साथ ही वर्तमान से ये अपेक्षा रखता है कि वो इतिहास में हुई ग़लतियों की पुनरावृत्ति के पथ पर ना चले। ■■



सोशल अड्डा

संपादन प्रभाग

किसान आंदोलन : सड़क से सोशल मीडिया तक

किसान आंदोलन को लेकर सोशल मीडिया पर खड़ी हुई सशक्त मुहिम के सामने गोदी मीडिया, भक्त लॉबी और आईटी सेल बौना साबित हुए। इससे समझा जा सकता है कि सरकार सोशल मीडिया को नियंत्रण में लेने के लिए क्यों परेशान है। यह सोशल मीडिया की ही ताक़त थी कि किसान आंदोलन की गूंज देश के बाहर भी सुनी जा रही है। सरकार जहां बार-बार नये कृषि क़ानून का समर्थन करते हुए आंदोलनकारियों को हतोत्साहित करने के लिए बैरिकेट लगाने, सड़कों पर कील ठोकने, इंटरनेट बंद करने में लगी है, वहीं सोशल मीडिया पर देश के भीतर और बाहर से मिल रहे समर्थन के कारण यह आंदोलन और मज़बूत होता जा रहा है। लगातार चल रहे किसानों से सरकार उतनी चिंतित नहीं दिखी जितनी सोशल मीडिया पर बड़ी हस्तियों के समर्थन से वह चिंतित है। सरकार के माथे पर चिंता की लकीरें उस वक़्त ज़्यादा गहरी हो गयीं, जब विदेशों से किसान आंदोलन के समर्थन में आवाज़ बुलंद हुई। यह सोशल मीडिया की ही ताक़त थी कि सारे 'गोदी सेलेब्रिटी' सरकार के समर्थन में अपने-अपने बिलों से बाहर निकल आए।

सबसे पहले मशहूर पाप सिंगर रिहन्ना का ट्वीट चर्चा में आया। उन्होंने सीएनएन का एक लेख ट्वीट करते हुए लिखा कि इस बारे में कोई बात क्यों नहीं कर रहा है? भारतीय मूल की अमेरिका की मशहूर यूट्यूबर लिली सिंह ने रिहन्ना के ट्वीट को शेयर कर उनका आभार जताया। उन्होंने ट्वीट कर कहा कि यह मानवता का मामला है, मैं किसानों के साथ खड़ी हूं। पर्यावरण कार्यकर्ता वेनिसा नकाते ने भी किसानों के प्रति समर्थन जताया। इसके बाद पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन की दिशा में काम करने वालीं एक्टिविस्ट ग्रेटा थनबर्ग ने अपने ट्वीट में लिखा कि 'हम भारत में किसानों के आंदोलन के प्रति एकजुट हैं।'

इसके साथ ही उन्होंने दूसरे ट्वीट में एक डॉक्यूमेंट शेयर किया, जिसमें भारत सरकार पर अंतर्राष्ट्रीय दबाव बनाने की कार्ययोजना साझा की गई थी और पांच चरणों में दबाव बनाने की बात कही गई। हालांकि बाद में उन्होंने अपना पुराना ट्वीट डिलीट कर, नया ट्वीट किया । उनके इस टूलकिट पर आपत्ति जताते हुए दिल्ली पुलिस की ओर से रिपोर्ट दर्ज की गयी। इसके बाद उन्होंने अपने ट्वीट में यह भी लिखा कि वे धमकियों से नहीं डरतीं। रिहन्ना के ट्वीट को बॉलिवुड अभिनेत्री ऋचा चड्ढा और स्वरा भास्कर ने सराहा वहीं कंगना रनौत ने उनको मूर्ख बताते हुए किसानों की तुलना आतंकवादी से कर दी। रिहन्ना और ग्रेटा थनबर्ग के सामने आने के बाद विदेशी हस्तियों की ओर

से सोशल मीडिया पर खुलकर किसाना आंदोलन के समर्थन में पोस्ट किये गये।

विदेशी हस्तियों में एक नाम जुड़ गया मीना हैरिस का। मीना हैरिस ने लिखा है कि यह कोई संयोग नहीं है कि एक महीने से भी कम समय पहले दुनिया के सबसे पुराने लोकतंत्र पर हमला हुआ था और अब हम सबसे बड़ी आबादी वाले लोकतंत्र पर हमला होते देख रहे हैं। यह एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। हम सभी को भारत में इंटरनेट शटडाउन और किसान प्रदर्शनकारियों पर सुरक्षाबलों की हिंसा को लेकर नाराज़गी जतानी चाहिए। इसके अलावा मीना हैरिस ने अमेरिका के कैपिटल हिल में हुई हिंसा और भारत में किसान आंदोलन का ज़िक्र करते हुए कई और ट्वीट किए । अमेरिकी प्रतिनिधि जिम अकोस्टा, ब्रिटिश सांसद क्लॉडिया वेब, कार्यकर्ता जेमी मार्गोलिन और अभिनेता जॉन कुसक ने भी सोशल मीडिया पर अपनी किसान आंदोलन के समर्थन में अपनी ताकत दिखायी। इन विदेशी हस्तियों के पोस्ट लाखों में शेयर और रीट्वीट किये गये। इससे किसाना आंदोलन के समर्थन में सोशल मीडिया पर चल रही मुहिल और ज़्यादा मज़बूत हो गयी। बॉलीवुड और खेल जगत इस मामले में दो भागों में विभाजित दिखा। दिलजीत दोसांझ, तापसी पन्नू, ऋचा चड्ढा, सोनू सूद, फिल्मकार हंसल मेहता, मुहम्मद जीशान आयूब, दिव्या दत्ता, नेहा शर्मा और क्रिकेटर इरफ़ान पठान ने किसान आंदोलन का समर्थन किया।

भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष जगत प्रकाश नड्डा ने लिखा है, प्रोपगैंडा फैलाने वाले और फ़र्ज़ी बातें फैलाने वालों की कोशिशों के ख़िलाफ़ हम एक साथ खड़े हैं। पूर्व क्रिकेटर और भारत रत्न सचिन तेंदुलकर ने ट्वीट किया कि भारत की संप्रभुता से समझौता नहीं किया जा सकता। भारत में जो भी हो रहा है बाहरी ताक़तें उसका दर्शक हो सकती हैं लेकिन प्रतिभागी नहीं। भारतीय भारत को जानते हैं और फ़ैसला उन्हें ही लेना है। आइए एक राष्ट्र के रूप में एकजुट रहें। लता मंगेशकर ने भी नड्डा के हैशटैग का इस्तेमाल करते हुए ट्वीट किया कि भारत एक गौरवशाली राष्ट्र है। एक गौरवांवित भारतीय होने के नाते मेरा पूरा यक़ीन है कि बतौर राष्ट्र हमारी कोई भी समस्या हो या परेशानी, हम उसे सौहार्दपूर्ण तरीक़े से, जनहित की भावना के साथ हल करने में पूरी तरह से सक्षम हैं।

क्रिकेट विराट कोहली, अभिनेता अजय देवगन, अभिनता अक्षय कुमार, पार्श्वगायक कैलाश खेर, करण जौहर, क्रिकेटर प्रज्ञान ओझा आदि गोदी सेलेब्रिटी ने सरकार के समर्थन में ट्वीट किये। इस पर अनेक सोशल मीडिया यूज़र ने मजे लिए। रोहित शर्मा नाम के एक ट्विटर यूजर ने गाजीपुर बॉर्डर की बैरिकेडिंग की तस्वीर पोस्ट की और अक्षय कुमार के ट्वीट का जवाब लिखा कि जी हां, सरकार मुश्किलों का हल तलाशने के लिए कुछ कोशिशें कर रही है। लेखक और यूट्यूबर मेघनाद ने लिखा कि आपदा को अवसर में बदल लिए, सरकारी मीडिया का झूठा प्रोपेगंडा दिखाइए और लगे हाथ इंडिपेंडेंट मीडिया को सपोर्ट कीजिए। सोशल मीडिया पर नामचीन हस्तियों के सामने आने के बाद सरकार पूरी तरह बैकफुट पर नज़र आयी।

सरकार को विदेशी हस्तियों द्वारा किसानों के समर्थन में किया गया ट्वीट पसंद नहीं आया। विदेश मंत्रालय की ओर से जारी बयान में इसे ग़ैर-ज़िम्मेदाराना बताते हुए कहा गया कि सनसनीख़ेज़ सोशल मीडिया हैशटैग और कमेंट्स से लुभाने का तरीक़ा, ख़ासकर जब मशहूर हस्तियों और अन्य लोगों द्वारा किया गया हो तो यह न तो सटीक है और न ही ज़िम्मेदाराना है। ■■



तर्क-वितर्क



शादाब आनंद
सहरसा, बिहार

आइडेन्टिटि पॉलिटिक्स और "अपनी क़यादत" – 2

आईडेंटिटी पॉलिटिक्स और अपने नेतृत्व की मांग मुसलमानों में केवल वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य से उपजी प्रतिक्रिया भर नहीं है या मुसलमान समुदाय वर्तमान में हो रहे सांप्रदायिक घटनाओं, त्रुटिपूर्ण अदालती फ़ैसलों एवं सरकारी विभेद से उकताकर 'अपने नेतृत्व' या अपनी हिस्सेदारी की मांग नहीं उठा रहा है, ऐसी बात करना या ऐसी बहसों द्वारा इस सोच को एक विशेष दायरों में सीमित करने की कोशिश करना या तो समस्या का अपूर्ण एवं उथला ज्ञान है अथवा इस विषय पर बरता जाने वाला पूर्वाग्रह और ग़ैर-ईमानदाराना रवैया।

हमें ऐसे प्रश्नों की गहन पड़ताल और विश्लेषण की आवश्यकता है। इस लोकतंत्र में जब-जब विभिन्न धार्मिक, भाषाई, जातीय समूहों का प्रतिनिधित्व 'क्राइसिस' का शिकार हुआ है तब-तब "पहचान की राजनीति" के उभार ने ज़ोर पकड़ा है और इसमें कोई बुराई नहीं है, इससे इस बहुलता से भरे लोकतंत्र में संतुलन बरक़रार रहता है।

आज़ादी के बाद से लेकर अब तक पिछले सात आठ दशकों में मुस्लिम समुदाय के साथ सरकारी तौर पर जो राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विभेद किया गया एवं जिसके पीछे इस देश के नीति-निर्धारक हैं उससे उपजी बेशुमार समस्याओं एवं प्रश्नों का हल मुस्लिम समुदाय अब तलाश करने की कोशिश कर रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पिछले तक़रीबन 8 दशकों से देश का मुसलमान देश में राजनीति करने वाले तमाम प्रमुख राजनीतिक नेतृत्वों की ओर आशा के साथ अपने क़दम बढ़ाता रहा है, मुसलमान जिस राजनीतिक दल का भी वोटर बना है, पूरी तरह समर्पित रहा है, देश के कथित धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक दलों पर ये समुदाय बारी-बारी से विश्वास करता रहा और मुंह के बल गिरता रहा। पिछले 70 सालों में हर बार मुसलमानों को अलग-अलग राजनीतिक नेतृत्व ने छला है, कभी मुसलमानों ने कांग्रेस

सम्पादकीय नोट:

यह कॉलम ज्वलंत विषयों पर वैचारिक विमर्श के लिए है। प्रस्तुत लेख में व्यक्त किए गए विचार से मासिक 'कान्ति' की सहमति ज़रूरी नहीं है। प्रबुद्ध पाठकों की आलोचना और तब्सिरों का स्वागत है।

पर आंखें मूंद कर भरोसा किया मगर नतीजे में उसे मलियाना, भागलपुर और मुरादाबाद जैसे असंख्य दंगे मिले, वहीं हाशिमपुरा जैसा सरकारी नरसंहार भी झेलना पड़ा।

मुसलमानों ने सामाजिक न्याय के कथित झंडाबरदार राजनीतिक दलों मसलन, समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी और बिहार में राष्ट्रीय जनता दल पर भरोसा किया और पिछले तक़रीबन तीन दशकों से मुसलमान इन पार्टियों के कोर वोटर माने जाते रहे हैं, मगर इस राजनीतिक समर्पण के बदले किसी भी पार्टी ने मुसलमानों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक विकास पर ढंग से संवाद तक नहीं किया है। मुसलमान पिछले लगभग तीन दशकों से इन पार्टियों के "बंधुआ वोटर" बनकर केवल इस वजह से रह गए कि उनका अस्तित्व बच जाए, सांप्रदायिक दंगों में उनके जान-माल की क्षति न हो, उनके युवाओं को रातों-रात घरों से उठाया ना जाए एवं उन्हें अपने धार्मिक क्रियाकलाप निर्बाध रूप से करने की स्वतंत्रता प्राप्त रहे। इससे आगे कभी भी किसी राजनीतिक पार्टी चाहे वह कांग्रेस हो या सामाजिक न्याय के प्रहरी राष्ट्रीय जनता दल, बहुजन समाजवादी पार्टी हो या समानता और वर्ग संघर्ष की बात करने वाली वामपंथी पार्टियां हो, इन्होंने कभी भी मुसलमानों को इससे आगे सोचने का अवसर ही नहीं दिया।

अन्य समुदायों के भांति देश का मुसलमान भी इस देश में मुख्यधारा के नागरिक की हैसियत से जीवन जीने का अधिकार रखता है, सड़क, बिजली, पानी अस्पताल, स्कूल, कॉलेज विश्व-विद्यालय, मकान, रोज़गार सरकारी नौकरियां यह सारी चीज़ें इस समुदाय की भी वैसी ही ज़रूरतें हैं जो इस देश की किसी भी सिविल सोसाइटी की हो सकती है, मगर देश का मुसलमान हर वक़्त यह सोचकर शुक्र मनाता रहा कि किसी तरह उसकी जान-माल, उसकी इज़्ज़त बची हुई है। दंगों में उसकी दुकान नहीं जली है या अंधेरी रात में उसके जवान बेटे को घर से नहीं उठाया जा रहा है या 1000- 2000 की भीड़ उसे घेरकर लिंच नहीं कर रही है।

पिछले 70-80 सालों में मुसलमानों ने देश के एक समूह की हैसियत से सारे उपलब्ध राजनीतिक विकल्प आज़मा लिए, मगर कोई भी विकल्प उन्हें मुख्यधारा के एक नागरिक समूह की हैसियत से नहीं देख सका। तक़रीबन हर राजनीतिक दल ने उन्हें एक ऐसे वोट बैंक की हैसियत से देखा जिसे मात्र "सर्वाइवल" की शर्त पर ब्लैकमेल किया जा सकता है। मगर ये राजनीतिक पार्टियां इस "शर्त" को भी पूरा करने में विफल रही। मुज़फ़्फ़रनगर में समाजवादी पार्टी की सरकार में कितने भयानक दंगे हुए जिसके नतीजे में लाखों लोग बेघर हो गए। ये बहुत पुरानी बात नहीं है! जिस दौरान दंगों से मुज़फ़्फ़रनगर, शामली और कैराना झुलस रहा था समाजवादी मुख्यमंत्री अखिलेश यादव, 'घोर समाजवादी' मुलायम सिंह यादव दोनों पिता-पुत्र



सैफ़ई में बॉलीवुड के सितारों के नृत्य का आनंद उठा रहे थे। बिहार जैसा राज्य जो राम जन्मभूमी आंदोलन के घोर साम्प्रदायिक समय में भी शांत बना रहा वहां हाल के वर्षों में मुसलमानों के ख़िलाफ़ दंगों और सांप्रदायिक घटनाओं में बेशुमार वृद्धि देखने को मिली है, और यह सब हुआ किसके शासनकाल में? नीतीश कुमार के। वही नीतीश कुमार जिन्हें सुशासन बाबू कहकर पुकारा जाता रहा है और जो कहते रहे हैं कि साम्प्रदायिकता के ख़िलाफ़ "ज़ीरो टॉलरेंस" की नीति अपनाई जाएगी। वो नीतीश कुमार ही थे जो भाजपा के साथ गठबंधन में सरकार चलाकर बिहार में अपेक्षाकृत अनभिज्ञ आरएसएस और दूसरे हिन्दुत्ववादी पुनरुत्थानवादी, सांप्रदायिक संगठनों को घर-घर पहुंचाने में सहायक बने। अभी पिछले वर्ष ही "समाजवादी" नीतीश कुमार की पार्टी ने अन्यायपूर्ण "नागरिकता संशोधन क़ानून" (CAA) को सदन से पास करवाने में अहम भूमिका निभाई। इसे कैसे भुलाया जा सकता है?

मुसलमानों के ख़िलाफ़ सांप्रदायिक दंगे इस स्वतंत्र, धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र की सबसे बड़ी त्रासदियों में से है। जहां भी मुसलमानों ने अपेक्षाकृत बेहतर आर्थिक स्थिति हासिल की है, ये दंगे उन्हें शुरुआती बिंदु पर वापस भेज देते हैं। वरिष्ठ भारतीय पत्रकार, खुशवंत सिंह नोट करते हैं कि 1940 के दशक में आज़ादी के बाद से भारत में हुई सभी सांप्रदायिक हिंसाओं में 75 प्रतिशत से अधिक कार्यवाहियां-जीवन और संपत्ति नष्ट होने के मामले में। मुसलमानों के ख़िलाफ़ थीं। हक़ीक़त ये है कि कमोबेश इस देश का मुस्लिम समाज कभी भी बहुसंख्यकवादी साम्प्रदायिकता की चोटों से उबर ही नहीं सका। इन्हीं त्रासदियों का एक बड़ा नतीजा है कि मुसलमान उच्च शिक्षा, प्रशासनिक हल्क़ों, उच्च एवं मध्यम श्रेणी की सरकारी नौकरियों में आज न के बराबर नज़र आते हैं।

सच्चर समिति की रिपोर्ट के अनुसार सच्चर समिति ने न केवल रोज़गार में बल्कि सरकारी सेवा में भी मुस्लिम भागीदारी को कम पाया। मुसलमानों की उपस्थिति IAS में केवल 3%, IFS में 1.8% और IPS में 4% थी। इस समुदाय का, रिपोर्ट के अनुसार भारतीय रेलवे में केवल 4.5% का प्रतिनिधित्व है, जबकि उनमें से भी 98.7% निचले स्तर पर तैनात हैं। पुलिस कांस्टेबलों में उनकी हिस्सेदारी केवल 6% है, स्वास्थ्य 4.4% में, परिवहन 6.5% में..। एक हालिया सर्वे की रिपोर्ट बताती है कि 591 ज़िलों में मात्र 8 पुलिस चीफ़ मुस्लिम हैं। देश के दूसरे सबसे बड़े जनसंख्या समूह की इस दयनीय सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशा के लिए आख़िर कौन ज़िम्मेदार है? क्या इसकी भी सारी ज़िम्मेदारी मुसलमानों के सर फूटेगी? या इस देश के नीति-नियंताओं की नीयत पर भी सवाल उठेंगे?

जब हम अपनी क़यादत या आईडेंटिटी पॉलिटिक्स की बात करते हैं हमारा यह अर्थ क़तई नहीं होना चाहिए हम एक पार्टी खड़ी करें या किसी ऐसी पार्टी का समर्थन करें जो केवल मुसलमानों को साथ लेकर चलने की बात करती है, दिन रात केवल मुस्लिम हितों का राग अलापती है, मुसलमानों की समस्याओं को एड्रेस करती है या देश में मुसलमानों को एक अलग-थलग समुदाय के तौर पर कुछ सरकारी फ़ायदे दिलवाना चाहती है ! आईडेंटिटी पॉलिटिक्स से हमारा आशय यह है कि जिस तरह इस देश का हर समुदाय बुनियादी सुविधाओं के साथ बग़ैर राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक विभेद के समान रूप से ससम्मान जीने का हक़ रखता है, जिस तरह से देश के तमाम अलग-अलग ग्रुप्स चाहे वह क्षेत्रीय समूह हों, भाषाई समूह हों अथवा धार्मिक समूह हों, वैचारिक समूह हों उनका जो प्रतिनिधित्व सदन, सड़क, शासन-प्रशासन में मौजूद है, मुसलमानों

अन्य समुदायों के भांति देश का मुसलमान भी इस देश में मुख्यधारा के नागरिक की हैसियत से जीवन जीने का अधिकार रखता है, सड़क, बिजली, पानी अस्पताल, स्कूल, कॉलेज विश्वविद्यालय, मकान, रोज़गार सरकारी नौकरियां यह सारी चीज़ें इस समुदाय की भी वैसी ही ज़रूरतें हैं जो इस देश की किसी भी सिविल सोसाइटी की हो सकती है।

में भी बतौर एक समूह के ये विकसित हो, मुसलमान भी इससे अछूते न रहें।

मुसलमान महज़ दंगों और "भाजपा के आ जाने" के डर के मद्देनज़र वोट न गिराएं, जो तथाकथित सेक्युलर पार्टियां मुसलमानों को ये डर दिखाकर ब्लैकमेल करती हैं उनकी दुकानदारी बंद हो, मुसलमान बतौर इस देश के एक बड़े जनसंख्या समूह के अपनी शर्तों पर नुमायां राजनीतिक समर्थन या विरोध की ताक़त हासिल करें, देश की नीति और कार्यक्रम निर्धारण में मुसलमानों का भी असर हो, वो महज़ यूज एंड थ्रो के पर्याय बनकर न रहें। ■■



आख़िरी पन्ना

सादी इलाहाबादी

इल्मी लेन-देन

क़ुरआन का विषय इंसान है इंसान की महत्ता का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि एक किताब जब इंसान को अपना विषय बनती है तो ज्ञान और कला की कितनी शाखाओं को उसे अपना विषय बनाना पड़ता है। अतः क़ुरआन में सोशियल साइन्स, पॉलिटिक्स, बायोलॉजी, फिज़िक्स, साइकॉलजी, एस्ट्रॉलजी, आदि क्या क्या विषय ज़ेरे-बहस आए हैं हालांक इन में से कोई विषय क़ुरआन का वास्तविक विषय नहीं है। यही वजह है कि क़ुरआन के स्कॉलर के लिए इन दूसरे विषयों का अध्ययन उसी हद तक अनिवार्य है जिस हद तक इंसान और इंसानी मुआमलात को समझने के लए ज़रूरी है। इसलिए क़ुरआन के स्कॉलर को दूसरे ज्ञान-शाखा के विशेषज्ञों से लाभ उठाना चाहिए और यही रवय्या अल्लाह के रसूल मुहम्मद (स०) के उस फ़रमान से भी लाज़िम आता है जिसमें आपने फ़रमाया कि हिकमत (wisdom) मोमिन का गुमशुदा धन है वो उसे जहां भी पाए हासिल करे। हिकमत मोमिन का गुमशुदा धन है से मुराद ये नहीं है कि इल्म व हिकमत पर मुसलमानों का कोई एकाधिकार है। 'जहां कहीं पाए' का मतलब ही ये हुआ कि हिक्मत कहीं भी पाई जा सकती है। इस हदीस में किसी को किसी तबक़े पर श्रेष्ठ बताना उद्देश्य नहीं, बल्कि एक-दूसरे के बीच बौद्धिक लेन-देन पर ज़ोर देना है।

क़ुरआन में इसी रवय्ये की तरफ़ इशारा किया गया है कि अगर तुम नहीं जानते तो अहले-इल्म से पूछ लो या इससे पहले जिन्हें किताब का इल्म दिया गया था, उनसे पूछ लो। एक-दूसरे से सीखने-सिखाने के अमल को समझने के लिए क़ुरआन की एक आयत और सीरत की एक घटना को नक़ल करना काफ़ी होगा कि इस्लाम इस पर कितना ज़ोर देता है कि जंग की हालत में भी क़ुरआन का ये फ़रमान है कि दुश्मनों में से कोई अगर क़ुरआन सीखने के लिए तुमसे कॉन्टैक्ट करे तो उसे अपनी हिफ़ाज़त में लेकर आओ और फिर पूरी हिफ़ाज़त के साथ उसे उसके ठिकाने तक पहुंचा दो, इसी तरह जंग-ए-बद्र के मौक़े पर अल्लाह के रसूल का ऐसे ग़ैर मुस्लिम क़ैदी से जो फिदिया (रिहाई के बदले ज़मानत की रक़म) देने की हालत में न थे, ये मुतालबा कि हमारे लोगों को लिखना-पढ़ना सीखा दें और आज़ाद हो जाएं।

कहते हैं कि जब डॉक्टर इक़बाल ने अंग्रेज़ों से मुल्क में अनिवार्य शिक्षा लागू करने का मुतालबा किया था तो उस पर मुस्लिम ओलेमा की तरफ़ से बड़ी मुख़ालिफ़त हुई थी, तब अल्लामा इक़बाल ने बद्र की इसी घटना से दलील पेश की थी।

अगर देखा जाए तो आर्किटेक्चर में मुसलमानों ने ग़ैर-मुस्लिमों के ज्ञान एवं कला से ख़ूब फाईदा उठाया, इसी तरह इतिहास में दूसरी कम्युनिटी मुसलमानों के इल्म व हुनर से लाभान्वित होती रही है। पुरानी मस्जिदों, महलों, मंदिरों, गुरुद्वारों और गिरजाघरों का दौरा करें तो आर्किटेक्चर में एक-दूसरे से ज्ञान का लेन-देन आपको साफ़ नज़र आएगा मगर ये लेन-देन दूसरी ज्ञान शाखाओं में उतना नज़र नहीं आता।

क़ुरआन के अध्ययन से पता चलता है कि क़ुरआन इस इल्मी लेन-देन की न सिर्फ़ ये कि पुरज़ोर हिमयत करता है, बल्कि जो लोग क़ुरआन पर ईमान लाते हैं और क़ुरआनी गाइडेन्स को क़ुबूल करते हैं, उन्हें इसका हुक्म देता है और ऐसे माहौल को बढ़ावा देने की बात करता है जहां ज्ञान की इस लेन-देन में मज़हब और सम्प्रदाय की क़ैद भी बाक़ी न रहे।

■■

Millennium Public School

Azad Colony, Pabra Road, Hazaribagh, Jharkhand
Affiliated to CBSE New Delhi. **Affiliation No :** 3430377



CURRICUCLUM

The school has classes from I to class VIII. It is an outstanding Co-Education English medium School, Follows C.B.S.E. curriculum and the syllabus prescribed by N.C.E.R.T. upto VIII.

Physical Education and computer education are considered an integral part of space education of the boys and girs apart from this drawing, dance & Songs are taught as extra activities to sharp their talents.

KANTI Monthly, New Delhi
NARCH 2021
Posted on 20-21 February 2021
Published on 18 February 2021
Posted Delhi RMS Delhi-110006

RNI 53372/91
DL(S)-01/3147/2021-2023
LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
License No. U(SE)-73/2018-2020
Total Pages with Cover: 52

MUSLIM MATERNITY & CHILDREN'S HOSPITAL

مسلم
میٹرنٹی
اینڈ چلڈرنس ہاسپٹل

Hospital is recognized for Post Graduate Courses in DNB Obstetric/Gynec & Paediatrics, Fellowship in Neonatology by IAP, B.Sc Nursing College, MRCOG, MRC PCH, M.D Texila American University.

Osmanpura, Hyderabad-24 Ph:No.040-24522005,24522006,24522008
Hospital with Values, Vision & Mission.

Website: www.muslimmaternityhospital.in E-mail:muslimmaternityhospital@gmail.com

DEPARTMENT OF GYNECOLOGY & OBSTETRICS

SERVICES
•Gynecology •Obstetric •Infertility Clinics

INSTITUTE OF CHILD HEALTH

SERVICES: •NICU •PICU •Kangaroo Mother Care (KMC) for low birth & Premature Babies •Super Speciality Pediatric Services (Pediatric Surgery, Pediatric Cardiology & Pediatric Endocrinology) •Immunization and Circumcision Facilities •Our 40 bedded NICU is well Equipped with infant warmers •Phototherapy Units, Portable X Ray and Ultrasound Machines •HFO Ventilators and CP!P Machines, Laminar Flow work stations •Hepafilters in NICU.

MUSLIM DIAGNOSTIC & RESEARCH LABORATORY

SERVICES:
•Biochemistry •Clinical Pathology •Immunology, Serolog y •Cytopathology • Histopathology •Hormonal Studies by !dvia Centuer CLI!, etc.

Emergency Services: •!ntenatal Scan •Whole !bdo men Scan •Female Pelvic Scan •High Resolution Scan •Colour Doppler Study •Ultra Sound Guided Procedures •Digital X-Ray Facility •TIFF! •Growth Scan.

CIRCUMCISION FACILITY

Monday to Saturday Timings: 2 PM to 5 PM

POLY CLINIC SERVICES

•General Medicine •General Surgery •Orthopedics •Dental Service •Dermatology & Cosmetology •Endocrinology , Pediatric Surgery •Laproscopy •Physiotherapy •Diet & Nutrition

Dr. M.Elias Ali Khan – M.D.
Chief Executive Officer

Under the Management of Islamic Social Society (ISSS) Regd.No.565/70), Hyderabad

A CHARITABLE INSTITUTION

President
Hamed Md. Khan

Vice President
Dr. M.K.M Zafer

Secretrary
Md. Rashad Uddin

Joint Secretary
Md. Zia Ur Rahman Siddique